★

रचयिता :

स्व० पण्डित अक्षयकुमारजी गंगवाल

★

सम्पादक :

डा० चेतनप्रकाश पाटनी

प्राध्यापक, जोधपुर विश्वविद्यालय

★

प्रकाशक :

सकल दिगम्बर जैन समाज

आनन्दपुर-कालू (पाली) राजस्थान

प्रकाशक :

सकल दिगम्बर जैन समाज

आनन्दपुर-कालू (पाली) राजस्थान

★

प्रथम-संस्करण :

१९७९

★

एक हजार प्रतियाँ

★

मूल्य :

नित्य पाठ

★

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

श्री महावीर दि० जैन नया मन्दि

आनन्दपुर-कालू

(पाली) राजस्थान

प्रस्तुत कृति के प्रथम वाचक तथा इस प्रकाशन के प्रमुख प्रेरणा-स्रोत

निस्पृहता, सरलता, समता, आदर्श एवं त्याग की सजीव मूर्ति,—

कथनी और करनी की एकता के प्रबल विश्वासी,

जितेन्द्रिय आगमनिष्ठ, परम-शान्त-मूर्ति,

अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, प्रतिभाशाली विद्वान्,

प्रेरणास्पद अजातशत्रु व्यक्तित्व के धनी,

अद्वितीय विनयी, सफल उपदेष्टा,

उत्कृष्ट चारित्रधारी, साधुरत्न

तपोनिधि,
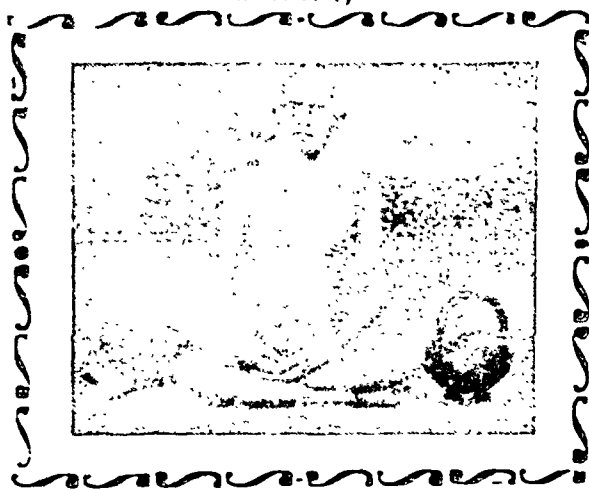
परमपूज्य १०८ स्व० श्री समतासागरजी महाराज

की पुण्य-स्मृति में

यह

जीवंधर चरित्र

उन्हीं के चरण कमल में सादर

卐 स म र्पि त 卐

शान्तमूर्ति, परम पूज्य

स्वर्गीय १०८ मुनिश्री समतासागरजी महाराज

(परिचय)

संसार में वे ही आत्मायें धन्य हैं जो अपने जीवन में मनसा वाचा, कर्मणा एक जैसी रहती हैं और जिनका जीवन जन-जन के लिए प्रेरणाप्रद होता है। ऐसी ही महान् आत्माओं में से एक थे-परम पूज्य मुनिश्री समतासागरजी महाराज। समता, सरलता, गुरु-गम्भीर-वाणी, विद्वत्ता, अनुपम प्रवचन-क्षमता, देवशास्त्र गुरु के प्रति दृढ़ निष्ठा, आत्मसंयम, कथनी और करनी की एकता तथा मृदु मुस्कान युक्त मोहक मुख मण्डल आपके व्यक्तित्व की प्रभावशाली विशेषताएँ थीं।

गृहस्थ जीवन में मुनिश्री पं० महेन्द्रकुमारजी पाटनी के नाम से सुविख्यात थे। राजस्थान के अजमेर जिले के ऊँटड़ा ग्राम में सद्-गृहस्थ श्री फतेहलालजी पाटनी के यहाँ मातुश्री मोहिनी बाई की कोख से ३१-७-१९१६ को मुनिश्री का जन्म हुआ। अजमेर में अपने पितृव्य श्री मिश्रीलालजी पाटनी के पास रह कर आपने विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। बाल्यकाल से ही कुशाग्र बुद्धि, परिश्रमशील एवं सुशील होने से आपने अध्ययन में शीघ्र ही दक्षता प्राप्त करली थी। संस्कृत अध्ययन में आपकी विशेष रुचि थी। आपने सन् १९३२ में प्रथमा, सन् ३५ में मध्यमा, सन् ३६ में कलकत्ता की काव्यतीर्थ तथा

सन् १९४० में बनारस की शास्त्री (प्रथम खन्ड) परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। संस्कृत एवं जैन ग्रन्थों के अध्ययन में आपको दरभगा के पण्डित श्री कुलानन्द झा, पं० बनारसीदास, पं० सूर्यनारायण शर्मा, भागवत के प्रसिद्ध विद्वान पं० लल्लूजी एवं पं० विद्याकुमारजी सेठी का पूर्ण सहयोग एवं सान्निध्य प्राप्त हुआ। कुछ समय तक अजमेर के सरावगी मोहल्ला एवं केसरगंज स्थित जैन विद्यालयों में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्य किया। फिर स्व० रायबहादुर बाबू नानमलजी अजमेरा के प्राइवेट पण्डित बन कर कार्य करते रहे।

१७ मार्च, १९३७ के दिन मदनगंज (किशनगढ़) में दिगम्बर जैन विद्यालय की स्थापना के समय आप उसके प्रथम अध्यापक नियुक्त हुए। आपके सतत प्रयासों से विद्यालय उत्तरोत्तर प्रगति करता रहा जो आज श्री कुन्थुसागर दिगम्बर जैन हायर सैकण्डरी स्कूल के वर्तमान रूप में है। अपने सेवा काल में आप समय की पाबन्दी और कठोर अनुशासन के पक्षधर रहे। ३७ वर्षों के लम्बे सेवा काल में आपको एक दिन भी कभी विद्यालय पहुँचने में विलम्ब नहीं हुआ। अपने गुणों के कारण आप छात्रों, अध्यापकों तथा अधिकारियों सभी के समादरणीय रहे।

दिनाङ्क ३१–७–७४ को अत्यन्त सम्मानपूर्वक विद्यालय से सेवा निवृत्त हुए। अपनी अनुपम सेवाओं के फलस्वरूप विद्यालय तथा मदनगंज जैन समाज ने अभिनन्दन-पत्र समर्पित कर अपनी भावभीनी श्रद्धा प्रकट की।

ज्ञान एवं चारित्र का संगम यदा कदा ही देखने को मिलता

है। मुनिश्री का गृहस्थजीवन भी आदर्श एवं अनुकरणीय रहा। आपके दो पुत्र हैं-बड़े पुत्र डा. चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक हैं, छोटे पुत्र श्री पदमचन्द पाटनी, केन्द्रीय भेड एवं ऊन संस्थान अविकानगर (टोंक) में वैज्ञानिक-१ के पद पर सेवारत हैं। मनिश्री परिग्रह-परिमाणव्रत के पालन में सदैव सचेष्ट रहे। सन् १९५९ में ही आपने सवारी का पूर्ण परित्याग कर दिया था। इसीव्रत के पालन हेतु आप अपने पुत्रों के विवाह में बरात में भी नहीं गये। अनावश्यक गपशप एवं आडम्बरों से आपको पूर्ण विरक्ति थी। अध्यापन कार्य से बचा शेष समय आप अध्ययन एवं लेखन कार्यों में ही विताते थे। आपने अजमेर से निकलने वाले 'चन्द्रप्रकाश' पाक्षिक पत्र का सम्पादन किया। पाटनी ग्रंथमाला के अन्तर्गत प्रकाशित कई पुस्तकों का सम्पादन किया। द्वादशानुप्रेक्षा, सोलहकारण विधान आदि महत्त्वपूर्ण कृतियों का सम्यक् प्रस्तुतीकरण आपके द्वारा सम्पन्न हुआ। पार्श्वपुराण और अष्ट पाहुड़ का गद्य रूपान्तर भी आपकी लेखनी द्वारा हुआ। आप अनेकानेक धार्मिक अनुष्ठानों के नियामक एवं अग्रणी रहे। स्वावलम्बन आपकी प्रकृति का अंग था। आत्मगोपन की प्रवृत्ति के कारण आप अपने सम्पूर्ण जीवन में विज्ञापनबाजी से सदैव दूर रहे। 'सादा जीवन उच्च विचार' आपके सम्पूर्ण जीवन की विशेषता थी। आप सभी के श्रद्धास्पद एवं अजातशत्रु व्यक्तित्व के धनी रहे। आपके सम्पर्क में अनेक विद्वान्, त्यागी-व्रती एव तपस्वीगण आते रहते थे और आपकी विद्वत्ता एवं व्यक्तित्व से प्रभावित होकर आपसे अनेकानेक गूढ विषयों का अध्ययन एवं ज्ञान प्राप्त करने को उत्सुक रहते थे।

अध्ययन एवं स्वाध्याय में प्रगाढ़ रुचि, शिष्टता, उदारता एवं निष्कपटता आदि गुण एक ही व्यक्ति में हों तो उसका व्यक्तित्व साधारण से कितना ऊपर हो सकता है, मुनिश्री इसका प्रत्यक्ष प्रमाण थे। आत्मा के गुणों का विकास मनुष्य को मोहजाल से मुक्त करने में शीघ्र सहायक होता है। तदनुरूप सेवानिवृत होते ही कुछ दिनों पश्चात् आपने किशनगढ़ रेनवाल जाकर ८ दिसम्बर १६७४ को आचार्यकल्प १०८ पूज्य श्री श्रुतसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण करली तथा १२ जून' ७५ को श्री महाबीरजो में आचार्यकल्प श्री से मुनिदीक्षा ग्रहण की। आपके व्यक्तित्व के अनुरूप ही आपको 'समतासागर' नाम पू० महाराज श्री ने प्रदान किया। संघ में रह कर आपने सन् ७५ का चातुर्मास सवाई माधोपुर में, सन् ७६ का सीकर में, सन्' ७७ का सुजानगढ़ में और सन्' ७८ का आनन्दपुर कालू में सम्पन्न किया। आपका विहार-क्षेत्र किशनगढ़-रेनवाल, जोबनेर, जयपुर, श्रीमहावीरजी, निवाई, सवाई माधोपुर, सीकर, कुचामनसिटी, मदनगज किशनगढ़, अजमेर, लाडनूं, सुजानगढ़, डेह नागौर, मेडता रोड़ मेहतासिटी, आनन्दपुर कालू-रहा। मुनिश्री के प्रवचनों में जैन अजैन सभी भारी संख्या में उपस्थित होते थे। आपकी वाणी में विशेष माधुर्य, सरलता एवं आकर्षण था जिससे सभी को चारित्र के पथ पर प्रवृत्त होने की प्रेरणा मिलती थी। आपकी प्रेरणा से अनेकानेक नरनारियों ने मद्य, मांस मधु, बीड़ी सिगरेट, रात्रिभोजन आदि का त्याग किया। जहां जहां आपका विहार हुआ वहाँ के जन-मानस में एक नयी चेतना का जागरण हुआ है।

इस वर्ष आपका चातुर्मास आनन्दपुरकालू में था। प्रत्यक्ष

श्रोतायों का कहना है कि वहां मुनिश्री के मुख से धर्मामृत का पान कर अभूतपूर्व आनन्द की प्राप्ति होती थी। चातुर्मास सम्पन्न होने पर पास ही के दलूंदा गांव में आपका विहार हुआ। वहां से ता. २६ नवम्बर १९७८ को जैन समाज, नीमाज के आग्रह पर केवल तीन मुनियों-पूज्य अजितसागरजी, पूज्य गुणसागरजी पूज्य वर्धमानसागरजी एवं श्रावकों के सहित पूज्य मुनि श्री विहार कर रहे थे कि नीमाज से एक मील पूर्व ही अकस्मात् हृदय गति रुक जाने से आपका स्वर्गवास हो गया। दिनाङ्क ३० नवम्बर ७८ को मुनिश्री के पार्थिव शरीर का दाह संस्कार सम्पन्न हुआ। समाचार सुनते ही समीपस्थ एवं दूरस्थ स्थानों से भी हजारों स्त्री पुरुष मुनिश्री के अन्तिम दर्शनों हेतु एकत्र हुए। क्रूर काल ने असमय में ही समाज एवं धर्म की एक महान् विभूति को हमसे छीन लिया। मुनिश्री से समाज एवं जनसाधारण को जो धर्मलाभ एवं मार्गदर्शन मिलता, हम सब उससे वंचित रह गए।

स्व. पण्डित अक्षयकुमारजी गंगवाल की इस अपूर्व रचना जीवंधर चरितको पूर्ण करने की प्रेरणा मुझे पूज्य मुनिश्री से ही मिली थी। उनके आशीर्वाद से यह पुस्तक उनके जीवनकाल में पूर्ण कर दी गई थी किन्तु खेद है कि आज प्रकाशन के समय मुनिश्री हमारे बीच नहीं हैं। उन परम तपस्वी, ज्ञानी, ध्यानी साधुराज को मेरा कोटि कोटि वन्दन—

श्रद्धावनत
पद्मराज जैन गंगवाल
(फरकेड़ीवाला)

प्लाट नं० बी. ६६
लक्ष्मीनारायणपुरी
जयपुर-३

* श्रद्धांजलि *

परम पूज्य १०८ आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजी महाराज संघस्थ प्रतिभाशाली मुनिराज १०८ श्री समतासागरजी महाराज- जिन्होंने आनन्दपुर-कालू चातुर्मास में निरन्तर चार माह तक हमें अपने उपदेशामृत का पान कराकर सन्मार्ग की ओर उन्मुख किया, जिनके निरन्तर ज्ञानाभ्यास एवं निर्दोष संयम की आराधना से सम्पर्क में आनेवाला जन-जन प्रभावित था, खेद है कि मनुष्य पर्याय को सफल सिद्ध करने वाले ऐसे ज्ञानी, ध्यानी इन्द्रिय विजयी और बाल-वृद्ध सभी के श्रद्धास्पद, हित-मित-भाषी, वीतराग साधुरत्न आज हमारे बीच नहीं रहे। क्रूर काल ने मंगसिर कृष्णा चतुर्दशी, सं० २०३५ दि० २९ नवम्बर, ७८ के दिन उनको हम से छीनलिया।

पूज्य महाराज श्री के सद्भाव से जैन समाज को काफी धर्म लाभ होता था, लेकिन अब सभी उससे वंचित रह गये। पूज्य महाराज श्री की रत्नत्रय साधना व शुद्धात्म वृत्ति का अनुराग अनुपम था। उनकी विद्वत्ता, समतापूर्ण वृत्ति व निस्पृहता का स्मरण बार-बार होता है।

'यथा नाम तथा गुण' वाले पूज्य श्री को विनम्र श्रद्धाञ्जलि !

जिन्होंने हमें भगवती सरस्वती की साधना का मार्ग बताया, जिनकी कर्त्तव्य-निष्ठा, सतत श्रम की भावना तथा व्यवहार कुशलता की अमिट छाप आज भी हमारे हृदय पर अंकित है; जो सन्तोष, सेवा

और सौहार्द की सजीव मूर्ति थे, ऐसे हमारे विद्यागुरु 'जीवन्धर चरित्र' के रचयिता स्वनामधन्य कवि पण्डित अक्षयकुमारजी गंगवाल भी आज हमारे बीच नहीं हैं। यद्यपि तेतीस वर्ष की अल्पायु में ही क्रूर काल ने हमसे छीन लिया था, तथापि उनकी रचनाओं के माध्यम से उनका यशः कार्य सदैव विद्यमान रहेगा।

उन स्वर्गीय विद्यागुरु के प्रति हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।

विनीत

१. नेमीचन्द पाटनी,	निवासी	ग्रा० कालू	प्रवासी	कलकत्ता
२. अनूपचन्द पाटनी,	,,	,,	,,	औरंगाबाद
३. झूमरमल गंगवाल		,,	,,	
४. हरकचन्द बगड़ा,	,,	,,	,,	कलकत्ता
५. तेजकरण कोठारी,	,,	,,	,,	कलकत्ता
६. जुगराज कोठारी,	,,	,,	,,	
७. शिखरचन्द बगड़ा,		,,	,,	कलकत्ता

अनुज की कलम से—

स्वर्गीय अग्रज पं० अक्षयकुमारजी गंगवाल

(संक्षिप्त परिचय)

विक्रम सं० १९७२ की अक्षय तृतीया को ग्राम सिराना (अजमेर) में जन्मे मेरे अग्रज स्व० अक्षयकुमारजी की प्रारम्भिक शिक्षा विजयनगर (अजमेर) के एक प्राइवेट स्कूल में छठी कक्षा तक हुई। पारिवारिक परिस्थितियां यद्यपि उच्च अध्ययन के सर्वथा प्रतिकूल थीं तथापि भाई सा० ने उनसे हार न मानी और एक दिन अपने मित्रसे प्रेरणा पा कर घर से बिना कुछ कहे-सुने ही वे 'भारतवर्षीय दि० जैन महाविद्यालय, ब्यावर' में आ गए। अपने विनम्र स्वभाव, अध्ययनकी अदम्य आकांक्षा और जिज्ञासु-वृत्ति के कारण वे विद्यालय में सर्वप्रिय बन गए। वहां रह कर उन्होंने विशारद, अंग्रेजी में मेट्रिक तथा जैन साहित्यरत्न की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। अनन्तर वे सर्व प्रथम अजमेर केसरगंज स्थित जैन विद्यालय में अध्यापक नियुक्त हुए।

लगभग एक वर्ष बाद, जैन समाज आनन्दपुर कालू के आह्वान पर उन्होंने वहां के दिगम्बर जैन विद्यालय के प्रधाना-ध्यापक पद का कार्यभार संभाला। कालू में वे अत्यधिक लोकप्रिय हुए। वहीं उनकी कविप्रतिभा मुखर हुई। उन्होंने स्वरचित धार्मिक एवं शिक्षाप्रद भक्ति-गीतों का अभ्यास अपने विद्यार्थियों

को कराया तथा 'संगीत समिति' नामक संस्था की स्थापना की। एक अन्य संस्था 'बालसंघ,' फिर 'बालहित वाचनालय' भी आपके कुशल मार्गदर्शन में फली-फूली। जैन परिवारों में आपने जैन विवाह विधि से फेरों की परम्परा डाली तथा मारवाड़ के अन्य अनेक स्थानों में जा जा कर स्वयं ने जैन पद्धति से विवाह कराए। आनन्दपुर कालू में नौ वर्षों तक समाज की सेवा करने के पश्चात् आप 'मणिकचन्द्र दि० जैन परीक्षा बोर्ड, सोलापुर' के निरीक्षक पद पर चले गए। किन्तु निरन्तर भ्रमण करने एव भोजन आदि की समुचित व्यवस्था न रहने से आपका स्वास्थ्य गिरता ही गया। स्वास्थ्य अधिक बिगड़ने पर वे कालू चले आए तब उनके साथ पण्डित वर्धमान शास्त्री पधारे थे। थोड़े से स्वास्थ्य लाभ के बाद वे कालू से लगभग १५ मील दूर नीमाज की जैन पाठशाला में प्रधानाध्यापक नियुक्त हुए। वहां उन्होंने शाला की प्रगति तो की ही, साथ ही स्थानीय श्वेताम्बर व दिगम्बर समाज के वर्षों के वैमनस्य को दूर कर पारस्परिक सौहार्द की स्थापना की।

निरन्तर अध्ययन एवं श्रमके कारण उनका स्वास्थ्य गिरता ही गया। रोग बहुत बढ़ गया तब उन्हें चिकित्सा हेतु जयपुर लाया गया किन्तु सभी सम्भव प्रयत्नों के बावजूद भी उन्हें बचाया न जा सका। ३३ वर्ष की अल्पायु में ही वैसाख कृष्णा दशमी दिनांक ३-५-४८ को प्रातः ६ बजे उनका देहावसान हो गया।

पूज्य भाई सा० के असामयिक निधन ने परिवार के समक्ष घोर संकट उपस्थित कर दिया था किन्तु आदरणीया भाभीजी ने

बड़े धैर्य, साहस एवं सन्तोष के साथ अनवरत कठोर श्रम करके अपनी तीन पुत्रियों (कंचन, मालती और सुशीला) एवं इकलौते पुत्र आनन्द का पालन पोषण किया, उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध किया तथा समय पर उनके विवाहादि भी किए। तीनों पुत्रियां जयपुर में ही ब्याही गईं। पुत्र आनन्द अभी जयपुर में ही राजकीय सेवा में रत है।

पूज्य भाई सा० की काव्य-प्रतिभा कालू में ही पुष्पित फलित हुई। लगभग सभी जैन समाचार पत्रों में उनकी रचनाएं प्रकाशित होती थीं। स्व० रमारानी जैन द्वारा सम्पादित और ज्ञानपीठ से प्रकाशित 'आधुनिक जैन कवि' पुस्तक में भी आपकी रचनाएं संकलित हैं। 'अक्षय आनन्द सागर' के नाम से उनके भक्ति-गीतों के चार पुष्प उनके जीवन-काल में ही कालू जैन समाज ने प्रकाशित किए थे। उनके निधन के बाद उनके शिष्यों ने उनकी पद्यमय रचनाओं का संग्रह, अक्षय-निधि' नामक पुस्तक के नाम से प्रकाशित किया। उनके द्वारा लिखित 'सीता की अग्नि परीक्षा' नाटक श्री दिगम्बर जैन वीर सगीत मण्डल, मदनगंज-किशनगढ़ द्वारा देश के कई भागों में लगभग ३० बार मञ्चित हो चुका है। पुस्तक रूप में भी यह प्रकाशित है। संस्कृत की कई रचनाओं का आपने हिन्दी पद्यानवाद किया था। भक्तामर स्तोत्र का उनका अनुवाद काफी सराहा गया। वृहत्स्वयम्भू स्तोत्र का अनुवाद भाई सा० ने मदनगंज किशनगढ़ के जैन विद्यालय के बोर्डिंग हाउस में सुपरिन्टैन्डेट के पद पर कार्य करते समय पण्डित महेन्द्रकुमार जी की प्रेरणा से ही किया था और अब उन्हीं की प्रेरणा से उसका प्रकाशन भी ता १ जनवरी

१९७९ को हो चुका है। स्वयम्भू स्तोत्र का पद्यानुवाद उनकी कवि-प्रतिभा से आपका परिचय अवश्य करा देगा।

भाई सा० अपने जीवन में कई विद्वानों के सम्पर्क में आए। व्यावर महाविद्यालय में भाई सा० की घनिष्ठता पण्डित गणेशीलालजी न्यायतीर्थ, पण्डित बाबूलालजी न्यायतीर्थ, खण्डवा, श्री महादेवलालजी शास्त्री जयपुर एवं श्री उत्तमचन्दजी मुलतान से रही। ये लोग कई बार भाई सा० के साथ विजयनगर में घर घर भी पधारे थे। इनके अलावा श्री पण्डित जमनालालजी जैन, वर्धा (जो अब बनारस में हैं) एवं पण्डित महेन्द्रकुमारजी पाटनी काव्यतीर्थ (स्वर्गीय पूज्य १०८ मुनि श्री समतासागरजी) से भी उनके बड़े गहरे और अभिन्न सम्बन्ध रहे। भाई सा० के देहान्त के बाद श्री जमनालालजी ने उनके और भाई सा० के बीच हुए सम्पूर्ण पत्र-व्यवहार को 'जैन जगत' पत्र में 'चिट्ठी पत्री' शीर्षक से छपवा दिया था।

मेरे लिए सम्पूर्ण प्रेरणा के स्रोत तो मेरे पूज्य अग्रज ही थे। मुझे सदैव उनकी स्मृति बनी रहती है। सोचता हूँ—आज वे होते तो मैं भी साहित्य-रचना के क्षेत्र में कहीं आगे बढ़ा होता। उनके बिना मैं अधूरा ही रह गया।

इस रचना के विषय में :—

तीस वर्ष पूर्व रचित जीवंधर की यह रचना अपूर्ण थी ! लगभग डेढ लम्ब बनाना शेष रह गया था कि सहसा भाई साहब अस्वस्थ हो गये, अस्वस्थता की हालत में ही उन्होंने मुझे एक बार

कहा भी था–कि जीवंधर की रचना अपूर्ण रह गई है, अतः इसे श्री पण्डित महेन्द्रकुमारजी पाटनी के पास मदनगज–किशनगढ़ भेज देना, ताकि वे इसका शेष भाग किसी से पूरा करालेंगे।

किन्तु भाई साहब के आकस्मिक निधन के बाद मैं एक जगह स्थिर नहीं रह पाया एवं इधर उधर स्थान बदलते रहने के कारण उनकी अनेकों रचनाएँ भी जहाँ–तहाँ रह गई। स्वयम्भूस्तोत्र वाली मूल कॉपी भी ३० वर्ष पूर्व की रखी हुई आनन्दपुर–कालू के विद्यालय में ही कहीं प्राप्त हुई बताई।

ज्यों–ज्यों समय बीतता गया, मैं भाई साहब के उस निर्देश को भी भूल गया, जो उन्होंने अस्वस्थता की हालत में जीवंधर की अपूर्ण रचना के विषय में दिया था।

किन्तु–सौभाग्य से संयोग ऐसा बना कि 'जीवंधर' की कॉपी उन्हीं के पास पहुँच गई, जिनके पास भेजने का भाई साहब ने अस्वस्थता की हालत में कहा था, और डा० चेतनप्रकाशजी के पूर्ण सहयोग से श्री भाई पद्मराजजी गंगवाल द्वारा रचना पूर्ण होकर पाठकों के पढने योग्य बन सकी ! अब सकल दिगम्बर जैन समाज आनन्दपुर–कालू की ओर से प्रकाशित होकर पाठकों की सेवामें प्रस्तुत हो रही है, बस यही सब कुछ है इस रचना की कहानी !

जयपुर
१ मार्च १९७९

रतनलाल गंगवाल
C/o इन्द्रा होजरी मिल्स स्टोर
त्रिपोलिय बाजार

जीवंधर चरित्र के

रचयिता

स्व० पण्डित अक्षयकुमारजी गंगवाल

जन्म :
वैशाख शुक्ला तृतीया
वि० सं० १६७२

卐

देह-विलय
वैशाख कृष्णा दशमी
वि० सं० २००५

★ अपनी बात

"सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः ।"

सचमुच काल बड़ा बलशाली है। इसके वशीभूत हो जाने पर सब चीजें स्मृतिशेष ही रह जाती हैं। प्रस्तुत कृति 'जीवन्धर चरित्र' अकाल में ही काल-कवलित होने से बच गई, यह हम सबका सौभाग्य है। परन्तु इसके रचयिता पं० अक्षयकुमारजी गंगवाल अल्पायु में ही काल के ग्रास बन गए थे और उनकी यह रम्य रचना अधूरी ही रह गई थी। ६ लम्ब से कुछ अधिक तो वे लिख चुके थे परन्तु वे इसे पूरी करते इससे पूर्व ही काल बली ने उनका आह्वान कर लिया।

इस वर्ष आ० कल्पश्रुतसागरजी महाराज का संघ सहित आनन्दपुर कालू (पाली-राजस्थान) में चातुर्मास हुआ। स्व० पण्डित अक्षयकुमारजी का इस स्थान से बड़ा लगाव रहा। काफी अरसे तक उनका कार्यक्षेत्र भी यही स्थान रहा था। यहाँ आज भी उनके प्रिय शिष्य अनन्य आदर एवं श्रद्धा के साथ उनका स्मरण करते हैं। पण्डितजी की चर्चा चली, तो संघस्थ मुनिराज (अब स्वर्गीय) श्री समतासागरजी ने पण्डितजी कृत वृहत्स्वयम्भू-स्तोत्र के अद्यावधि अप्रकाशित हिन्दी पद्यानुवाद को प्रकाशित करवाने की प्रेरणा की। मैंने इसके प्रकाशन की रूपरेखा बनाई तो अनुवादक के परिचय एवं फोटो के लिए स्व० पण्डितजी के अनुज

श्री रतनलालजी गंगवाल जयपुर से पत्र व्यवहार हुआ। उन्होंने परिचय एवं फोटो भेज कर अनुगृहीत किया, साथ ही यह भी लिखा कि स्वर्गीय भाई सा० द्वारा रचित "पद्यमय जीवन्धर चरित्र' एक रम्य रचना है, किन्तु वह अपूर्ण है, उसे पूरा करना मेरे वश की बात नहीं है। यदि वह किसी तरह पूर्ण हो सके तो उपयोगी ग्रन्थ तैयार हो सकता है।"

मैंने उन्हें इस अपूर्ण कृति को भेजने का अनुरोध किया, मेरा अनुरोध स्वीकार कर उन्होंने वह रचना आनन्दपुर कालू भिजवा दी। स्व० पूज्य समतासागरजी एवं एवं संघस्थ अन्य साधुवृन्द को सरलभाषा में यह रम्य रचना सर्वसाधारण के लिए उपयोगी प्रतीत हुई। इसके प्रकाशन की चर्चा होने लगी, परन्तु अभी तो इसे पूर्णता प्राप्त करनी थी। पूज्य समतासागरजी महाराज ने मूल पाण्डु-लिपि से प्रेस कापी करना प्रारम्भ कर दिया और शेष डेढ़ दो लम्बों की रचना के लिए करकेड़ी निवासी श्री पद्मराजजी गंगवाल को जयपुर लिखा गया। गुरुदेव के आदेश को सहर्ष शिरोधार्य कर उन्होंने अपने व्यस्त व्यावसायिक जीवन में से कुछ समय निकाला और इस रचना को पूर्णता प्रदान की है। इस तरह प्रस्तुत कृति कवि द्वय (अक्षय, पद्म) की रम्य रचना है जिसे पूर्ण कराने का श्रेय स्व० श्री समतासागरजी महाराज को है। उन्हीं की प्रेरणा से यह रचना पूर्ण भी हो सकी है और प्रकाशित भी हुई है। खेद है कि इसके प्रथम रचयिता की भाँति इसकी पूर्णता और प्रकाशन के प्रबल प्रेरक भी आज हमारे बीच नहीं हैं, कालबली ने उन्हें हमेशा के लिए हमसे विलग कर दिया है।

'जीवन्धर चरित्र' प्रसाद एवं माधुर्य गुण से परिपूर्ण सरस कथात्मक काव्य कृति है। महाकाव्य की शास्त्रीय जटिलता के आधार पर तो इसकी रचना नहीं हुई है फिर भी मोक्षगामी महापुरुष जीवन्धर कुमार के विविध जीवन-प्रसंगों का लेखा-जोखा होने से यह एक महान् काव्य से कम--गरिमापूर्ण नहीं है। सरसता, सरलता और प्रवाहमयता इसकी अनुपम विशेषताएँ हैं। तत्सम और तद्भव शब्दों का सुष्ठु प्रयोग होने पर भी पठन और वाचन में कहीं अवरोध नहीं आता। बहुप्रचलित छन्दों (सवैया, अडिल्ल, लावणी, तर्ज राधेश्याम, दोहा, सोरठा) में होने के कारण चरित्र पूर्णतः गेय है। रचना की रम्यता, सुग्राह्यता और सरसता कृति के किसी भी अंश को कहीं से भी पढ़ कर ज्ञात की जा सकती है। शैली में प्रवाह है, भाषा आलंकारिक है। अवसर के अनुकूल शृंगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र आदि रसों का प्रयोग हुआ है। स्व० अक्षयजी की शैली को ही श्री पद्मराजजी ने भी अन्तिम डेढ़ लम्ब में अपनाया है। यदि उल्लेख न किया जाए तो अन्तर कर पाना जरा मुश्किल होगा।

यह सरस, रोचक काव्य-कथाकृति बाल, युवा और वृद्ध स्त्री-पुरुषों सभी के लिए समानरूप से उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। स्व० पूज्य समतासागरजी महाराज इस काव्यकथाकृति का,चातुर्मास के दौरान दिए जाने वाले अपने मध्याह्न के प्रवचनों में सास्वर वाचन भी कर चुके थे, तभी से कालू में यह लोकप्रिय होगई थी इसका मुद्रित रूप हाथों में है।

● उपेक्षित एवं अपूर्ण कथाकृति को पूर्णता एवं स्थायी जीवन

देने की प्रेरणा करने वाले स्वर्गीय मुनिराज समतासागरजी के प्रति मैं अपनी अनन्य श्रद्धा समर्पित करता हूँ। दिवंगत पूज्यश्री को हार्दिक श्रद्धाञ्जलि !

● इस वृत्ति के जन्मदाता स्वनामधन्य स्वर्गीय पण्डित अक्षयकुमारजी गंगवाल की पवित्र आत्मा को भी नमन करता हूँ जिनके मन में सर्वजनोपयोगी यह पद्यकथा लिखने की भावना का प्रादुर्भाव हुआ और जिन्होंने इतनी रम्य रचना प्रस्तुत की।

● आदरणीय श्रीयुत पद्मराजजी गंगवाल ने अपनी व्यस्त दिनचर्या में से समय निकाल कर जिस तत्परता से अपूर्ण कृति को पूर्णता प्रदान की है, उसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। देव, शास्त्र और गुरु के प्रति उनकी भक्ति उत्तरोत्तर वृद्धिगत हो, यही कामना है।

● प्रकाशन का व्यय-भार वहन कर जिन उदारमना दातारों ने स्व० पूज्य पण्डितजी के प्रति अपनी सदाशयता और जिनवाणी के प्रति अपना बहु मान प्रकट किया है, वे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

● कृति के जन्म, संरक्षण, लेखन-प्रकाशन और मुद्रण सम्बन्धी व्यवस्था के प्रथम साक्षी तथा 'अथ' से 'इति' तक सम्पूर्ण गतिविधियों का सूत्र थामने वाले आदरणीय श्रीयुत रतनलालजी सा० के प्रति मैं आभार किन शब्दों में व्यक्त करूँ ? यदि वे बार बार पत्र न भेजते तो शायद यह कृति इतनी जल्दी आपके हाथों में न पहुँचती। मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

● श्रद्धेय पण्डित भँवरलालजी न्यायतीर्थ, संचालक श्री वीर प्रेस, जयपुर को भी मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अल्पावधि में ही स्वच्छ, सुन्दर एवं निर्दोष मुद्रण कर यह कृति आपके हाथों में पहुँचाई है।

वस्तुतः इस कृति के सम्यक् प्रस्तुतीकरण का सम्पूर्ण श्रेय इन्हीं महानुभावों को है, मेरा इसमें कुछ भी नहीं है, अवशिष्ट त्रुटियों के लिए मैं उत्तरदायी हूँ। विज्ञपाठकों से अनुरोध है कि वे इसे पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया एवं सुझावों से मुझे अवगत करायें ताकि आगामी संस्करण में तदनुरूप परिवर्तन किया जा सके। इत्यलम्—

१० जनवरी, ७६
C/o श्री पार्श्वनाथ जैन मन्दिर
शास्त्री नगर, जोधपुर

विनीत
डॉ० चेतनप्रकाश पाटनी
सम्पादक
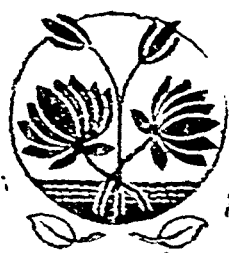
दो शब्द

स्व० श्री अक्षयकुमारजी से मेरा परिचय सन् १९३२-३३ के आस पास हुआ था, जब प्रथमा मध्यमा आदि परीक्षायें देनेके लिए ब्यावर जाता था और नसियांजी में स्थित विद्यालय में ठहरता था। वह परिचय निरन्तर बढता गया और फिर जब भी वे जयपुर आये-मिले बिना नहीं गये। वे सरल स्वभावी और शान्त प्रकृति के थे। कवितामें उनकी गति अच्छी थी। उनकी रचनायें जहां तक मुझे याद है कई पत्रों में छपी हैं। प्रस्तुत जीवन्धर चरित्र उनकी एक सुंदर रचना है जो सरल छन्दोंमें, विशेषत: राधेश्याम रामायण की तर्ज में लिखी गई है। कहीं कहीं संस्कृत शब्द हैं पर उनका अर्थ भाव-प्रवाह में साधारण जन के भी समझ में आजाता है। स्व० मुनि श्री समतासागरजी महाराज स्वयं ने मुद्रण हेतु इसकी प्रतिलिपि की तो जहां कहीं कोई अटकाव था उसे भी दूर कर दिया जिससे यह रचना निखर गई है। कथानक इस प्रकार लिखा है कि एक बार पढना प्रारंभ करने के पश्चात् पूरी किताब पढे विना मन उसे छोडना नहीं चाहता है। प्रसंगवश यत्र तत्र उपदेश, सूक्तियां आदि भी इसमें हैं। दृष्टान्त भी दैनिक जीवन में आनेवाली घटनाओं के हैं-अत: रचना सभी को रुचिकर बन गई है। भाई अक्षयजी की यह रचना तीस वर्ष बाद प्रकाश में आ रही है। इस प्रकार न जाने कितने कवि और साहित्यकारों की रचनायें अप्रकाशित अवस्था में ही जीर्णशीर्ण दशा को प्राप्त हो गई हैं-और हो रही हैं। दिगम्बर जैन समाज आनन्दपुर कालू ने इसे प्रकाशित कर स्तुत्य कार्य किया है। इस प्रकार समाज अप्रकाशित उपयोगी रचनाओं को प्रकाश में लाने का कार्य करे तो जिनवाणी की महती सेवा हो।

भंवरलाल न्यायतीर्थ, जयपुर

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

पद्यमय

जीवंधर चरित्र

प्रथम अध्याय

॥ दोहा ॥

नमन करूं जिनराजपद, मनन करूं जिनधर्म ।
रमन करूं जिनपंथमें, शमन करूं शठकर्म ॥१॥
मंगलमय भगवानको, बारम्बार प्रणाम ।
जिनके कृपा-कटाक्ष से, पूर्ण होय सब काम ॥२॥
जीवंधर की जीवनी, है पवित्र अतिरूप ।
श्रवण सुधा वीणा वचन, मन मोदन रसकूप ॥३॥

× × ×

सब द्वीपों के मध्य द्वीप जम्बू अति सुन्दर ।
मेरु कुलाचल सर औ सरिता जिसके अन्दर ॥४॥
भरतादिक हैं सप्त क्षेत्र अति शोभा धारी ।
कर्मभूमि औ भोगभूमि की रचना सारी ॥५॥

भरत क्षेत्र में हेमांगद जनपद अति सोहे ।
वन उपवन पुर पत्तन आदिक से मन मोहे ॥६॥
बने अतीवोत्तुंग राजप्रासाद जहां पर ।
नगर नगर औ ग्राम ग्राममें सुखी सर्व नर ॥७॥
ईति भीति भय नहिं नहीं चौरी औ मारी ।
रहे सदैव सुभिक्ष प्रजा आनंदित सारी ॥८॥
सुरसरिता सम सरितायें जिसमें बहती हैं ।
मिष्ट नीरकी कमी कहीं पर नहिं रहती है ॥९॥
सागर सम सर बने कमलिनीकुल कर मंडित ।
जैसे विद्या मंडल मंडित होवे पण्डित ॥१०॥
पांथवर्ग सर्वत्र जहां दिन रात विचरते ।
बने सुपथ बहु विटप और निर्झर निर्झरते ॥११॥
कृषकवर्ग के धान्य पूर्ण जो क्षेत्र मनोहर ।
अतिविशाल अतिरम्य छटा उनकी मुनि मनहर ॥१२॥

॥ दोहा ॥

ऐसे सुन्दर देश में राजपुरी अति रम्य ।
नामधेय अन्वर्थता इसी नाम से गम्य ॥१३॥
सत्य क्षमा वात्सल्य मय धर्मधुरंधर धीर ।
प्रजापाल भूपाल थे सत्यंधर वरवीर ॥१४॥
रूपराशि लावण्यखनि सुगुणधाम सुकुमार ।
सत्यंधर भूपाल के 'विजया' थी पटनार ॥१५॥

॥ छन्द राधेश्याम ॥

संसृति की सब ललनाओं का सौंदर्यदंभ था चूर्ण किया ।
कर प्राप्त नाम विजया, भूपति का हृदय प्रेम परिपूर्ण किया ॥

अथवा विजयी नृपके मन पर भी विजय प्राप्तकर रक्खी थी ।
इसलिये विश्वविजयाने 'विजया' संज्ञा धरवा रक्खी थी ॥१७॥

इसकी चंचलता के आगे पक्षी-समाज भी विजित हुआ ।
बस इसी हेतु हम समझे, 'वि-जया' नाम सु इसका विदित हुआ
इसका शाब्दिक सौंदर्य देख कविजनने कविता बंद करी ।
इस हेतु-'कवि-जया' संज्ञा भी कविजनने ठीक पसंद करी ॥१९
भूपतिके मनको मोहित कर सारी सुधबुध बिसराई थी ।
शिवकी विजयाकेतुल्य तभी तो विजया संज्ञा पाई थी ॥२०॥

विजया के रूप अनूपम पर सत्यंधर मुग्ध हुए भारी ।
इस एक सम्पदा के आगे, थी तुच्छ सम्पदायें सारी ॥२१॥
चुम्बक के पीछे लोह यथा निज स्थान छोड चल देता है ।
या शलभ दीप लौपर आहूती, निज प्राणों की देता है ॥२२॥
यों ही सत्यंधरने अपने सब राजकाज को छोड़ दिया ।
विजया को पाकर और सभी वैभव से मुखको मोड़ लिया ॥
मंत्री था काष्ठांगार एक उसको सब राज्य प्रबंध दिया ।
स्वच्छन्द बने निर्द्वन्द्व आप सब काम देखना बंद किया ॥२४॥

समझाया उनके सचिवोंने बहुभांति विनय करके उनको ।
लौटा न सका पर कोई भी उन्मार्गी-भूपतिके मनको ॥२५॥

क्या समझा पाया है अब तक कोई भी उस वन हस्ती को।
हथिनी के पीछे मत्त हुआ जो खोदेता निजमस्ती को ।।२६।।
क्या हटा सका है कोई भी मछली को विषमय कांटे से ।
संयुक्त सदा जो रहता है उसके मनमोहक आटे से ।।२७।।
वह भ्रमर कमल पर लुब्ध हुआ मुकुलित हो प्राण गमाता है
क्या कोई भी उस सुरभि-सखा को संकट समझा पाता है ।२८
जो शलभ दीपशिख पर मोहित हो प्राण निछावर करता है।
है कौन बताओ जो उसको समझाने का दम भरता है ।।२९।।
स्वर पर मोहित होकर कुरंग जो प्राण खुशी से देता है।
उसको समझाने का शिर पर अब भार कौन नर लेता है ।।३
बस इसी भांति ही विफल हुए,मंत्रीगण राजा के आगे ।
निद्रित फिर भी जग सकता है, जागृत कहिये कैसे जागे ।।३१

।। दोहा ।।

राज त्याग नृपने किया, अन्तःपुर में वास ।
ज्यों कोई योगी करे, पुरके अन्त निवास ।।३२।।
अद्भुत योगीश्वर हुए, सत्यंधर भूपाल ।
हो विरक्त सब राज्य को, त्याग दिया तत्काल ।।३३।।

× × ×

विस्तृत धरा का राज्य पाया सचिव काष्ठांगार ने ।
भूपाल के मनको लुभाया विषय के शृंगार ने ।।३४।।
करने लगे क्रीड़ा प्रियासंग नित्य नित्य नई नई ।
यौवनमयी उद्यान में आई बहार नई नई ।।३५।।

जाते कभी गृह–वाटिका में पुष्प–शय्यायें रचा ।
क्रीड़ा अनेक प्रकार करते मदन धूम मचा मचा ।।३६।।
पुष्पावचय करते कभी मिलकर प्रिया के संग में ।
जल केलियां करते कभी पिचकारियां भर रंग में ।।३७।।
शृंगार के शृंगार थे शृंगार दोनों के नये ।
मधुमास औ वासंत लक्ष्मी दंपती थे बन गये ।।३८।।
यौवन, विभव, प्रभुता पुनः अविवेक चारों मिल गये ।
बस दंपती के हृद्‌कमल हो पूर्ण विकसित खिल गये ।।३९।।
किंपाक फल खाने लगे विषवृक्ष पर चढ़ने लगे ।
माधुर्य के उन्मादमें पथ नाश में बढ़ने लगे ।।४०।।
बीता बहुतसा काल यों आमोद और प्रमोद में ।
जाना नहीं पर है धरा क्या क्या अनागत गोद में ।,४१।।
थी एक दिन प्रिय संग में सोई हुई निशि में प्रिया ।
भय स्वप्न देखे जब निशा का पहर अंतिम आगया ।।४२।।
कंकेलि तरुका भंग होकर नव अशोक प्रकट हुआ ।
उसपर दिखा शुभ मालिकाष्टक बस निशाका तट हुआ ।।४३।।
प्रातःक्रिया से निवृत्त हो पहुँची निकट प्राणेश के ।
शृंगार सब बिखरे पड़े थे आज उसके वेश के ।।४४।।
लखके प्रिया को आज चिन्तित चकित होकर भूपने ।
पूछा प्रिये ! क्या रंग धारा आज तेरे रूपने ।।४५।।
किस हेतु है आहें निकलती, क्यों मुर्दनी छाई हुई ?
क्यों है तुम्हारी कान्ति निर्मल आज मुरझाई हुई ।।४६।।

मुझ से कहो सब साफ जो कुछ हे प्रिये शंका हुई ।
किस हेतु काली आज है यह स्वर्ण की लंका हुई ॥४७॥
बोली हृदय को थाम रानी नाथ ! जाने क्या हुआ ।
मेरे हृदय से एकदम ही लोप खुशियों का हुआ ॥४८॥
हां रात को मैंने शयन में स्वप्न देखे तीन हैं ।
उस ही समय से वस्तु कोई चित्तको भातीन है ॥४९॥
बोले नृपति मुझ से कहो क्या स्वप्न देखे आपने ।
जिससे दुःखी तुमको किया है इस तरह संतापने ॥५०॥
संक्षेप में तब स्वप्न रानी ने निवेदन कर दिये ।
बोली प्रभो ! परिणाम इनका आप अब कह दीजिये ॥५१॥
बस स्वप्न सुनते ही नृपति के चोट सी मनमें लगी ।
पुरुषत्व के कारण मगर तत्काल ही धीरज जगी ॥५२॥
कुछ हास्य का अभिनय किया, बोले नतीजा है भला ।
सुत रत्न एक अशोक सम होगा तुम्हें फूला फला ॥५३॥
वे आठ मालायें बताती आठ उसके रानियां ।
यह फल तुम्हारे स्वप्नका जो था प्रिये ! सब कह दिया ॥५४

॥ दोहा ॥

प्रथम नष्ट कंकेलिका फल क्या है जननाथ !
बोली महिषी हो दुःखित कंपित जोड़े हाथ ॥५५॥

× × ×

उसका भी फल होगा कुछ यों ही प्रिये ।
दुःख नहीं करना मनमें उसके लिये ॥५६॥

सुनते ही ये शब्द हुई महिषी दुखित ।
हृदय पड़ा हो वज्रयथा होकर कुपित ।।५७।।
आह खेंच कर मूर्छित हो धरणी पड़ी ।
संज्ञा औ चेतना सभी तत्क्षण उड़ी ।।५८।।
की सचेष्ट सेवक गण ने उपचार कर ।
करने लगी विलाप तभी रानी प्रखर ।।५९।।
अरे निर्दयी प्राण निकल जाते न क्यों ?
अहो कृतान्त बुलाये भी आते न क्यों ।।६०।।
धरणी तू भी आज अरी फटती नहीं ।
अरे गगन से बिजली भी पड़ती नहीं ।।६१।।
प्राणनाथ! मैं ही इन सबकी (अनर्थों) की सूल हूँ ।
हाय आज मैं प्रियतम के प्रतिकूल हूँ ।।६२।।
यों विलाप रानी ने बहुतेरा किया ।
हृदय थामकर यों नृपने धीरज दिया ।।६३।।
अहो प्रिये! किस कारण इतना शोक है ?
परिवर्तनमय तो सारा ही लोक है ।।६४।।
सभी काम हैं दुनिया में होते सदा ।
किन्तु कौन हैं इस प्रकार रोते सदा ।।६५।।
जीवन मरण सभी के है पीछे लगा ।
सुख-दुःख ही तो है इस प्राणी का सगा ।।६६।।
कौन सर्वदा रहता है जगमें दुःखी ।
कहो कौन है सदा यहां पर हंसमुखी ।।६७।।

अहो बड़ा आश्चर्य प्रिये! तुमने किया।
जीवित का भी शोक मृतकवत् कर लिया ।।६८।।
मान लिया क्या मरण हमारा आज ही।
इस प्रकार जो शोक मनाया आज ही ।।६९।।
होना होगा वही प्रिये! हो जायगा।
किया हमारा ही तो आगे आयगा ।।७०।।
छोड़ो तुम यह रुदन प्रिये! है अपशकुन।
शोक त्याग कर करो शीघ्र ही स्वस्थ मन ।।७१।।
यों रानी को बहुत भांति धीरज दिया।
उसने भी संतोष हृदय में कर लिया ।।७२।।
भूल गये यह बात सर्व कुछ कालमें।
फंसे पूर्ववत् उभय विषय के जाल में ।।७३।।
अहो विषय! तू अद्भुत विष है लोकमें।
अमृत का सा कार्य किया है शोक में ।।७४।।

।। दोहा ।।

कुछ दिन में विजया हुई, अंतर्वत्नी आप।
चलते दोनों संग में, अहो पुण्य औ पाप ।।७५।।
मन बहलाने के लिए, रानी का उस काल।
बनवाया भूपाल ने, 'केकीयंत्र' रसाल ।।७६।।
बैठ प्रेम से दंपती, करते गगन प्रयाण।
धूमधाम कुछ दूर तक, आते अपने स्थान ।।७७।।

अब पाठक सुनिये जरा, कर्म चक्र की चाल ।
मंत्री काष्ठांगार को, मिला मुफ्त का माल ॥७८॥

× × ×

इक रोज काष्ठांगार ने सोची हृदय में बात ।
यह राज्य लक्ष्मी कुछ दिनों ही है हमारे हाथ ॥७९॥
जिस रोज चाहेगा नृपति तत्काल लेगा छीन ।
रह जाऊँगा मैं हाथ मलता देखता मुख दीन ॥८०॥
ऐसी करूं तरकीब कोई राज्य मम होजाय ।
मैं ही सदा राजा रहूँ कोई न पूछे आय ॥८१॥
संयोग से नृपके न कोई पुत्र है युवराज ।
अतिरिक्त सत्यंधर न कोई मांग सकता राज ॥८२॥
फिर क्यों न इसही को पठा दूं शीघ्र यम के द्वार ।
होजाएगा मेरा सभी फिर राज्य का भण्डार ॥८३॥
मैं ही नृपति कहलाऊंगा होगी न कुछ भी रोक ।
फिर कौन होगा जो मुझे कुछ भी सकेगा टोक ॥८४॥
बस शीघ्र उसने अन्य सचिवों को बुलाया पास ।
बोला मुझे कुछ आप से है बात कहनी खास ॥८५॥
कुछ समय से इक देव मुझको कर रहा है तंग ।
होता मुझे भय है बहुत, कुछ देख उसके ढंग ॥८६॥
कहता मुझे है वह दबाकर "कर नृपति का घात ।"
भारी विपद में पड़ रहा हूं, सोचकर यह बात ॥८७॥

है कार्य तो यह घोर पातक, किन्तु देव कठोर ।
पापी बनायेगा मुझे, दिखता उसी का जोर ।।८८।।
मैं कूप खाई मध्य हूं हैं आप सब मतिमान ।
मुझको उपाय बताइये, मैं क्या करूं इस आन ।।८९।।

॥ दोहा ॥

सुनकर इस प्रस्तावको हुए दुखित मन सर्व ।
किन्तु कहे विपरीत कुछ किसका ऐसा गर्व ।।९०।।

× × ×

उनमें भी एक सचिव ने यह प्रस्ताव नहीं स्वीकार किया ।
बोला है स्थानापन्न नृपति ! तुमने नहिं नेक विचार किया।।९१
जिसने तुमको विश्वस्त समझ यह राज्य सर्व संभलाया है ।
है दुःख उसी के लिये तुम्हींने यह षड्यंत्र बनाया है ।।९२।।
पहले तो सोच करो मनमें, राजा जनता का ईश्वर है ।
ईश्वर के द्रोहीका कहिये संसृति में कौन जगह घर है ।।९३।।
तिस पर भी तुम पर है उसने लोकोत्तर सा उपकार किया ।
उपकारी को बदला देने का तुमने खूब विचार किया ।।९४।।
है नहीं पाप जगमें कोई सुनिये कृतघ्नता से बढ़ कर ।
क्षण नश्वर लक्ष्मी के खातिर क्यों पाप बांधते हो शिर पर।९५
तुम तो वैसे ही राजा हो, मंत्री राजा से हीन नहीं ।
सब राज्य सचिव ही करते हैं, राजा तो रहते पड़े कहीं ।।९६।।
समझो, यह राजद्रोह करके, बन गये आप यदि भूपति भी ।।
अन्यायप्राप्त यह लक्ष्मी भी ठहरेगी तुम पर नहीं कभी ।।९७।।

जो कुछ भी भाग्य दिलाता है उसही में बस संतोष करो ।
इस निंदितमार्ग नहीं जाओ समझो मनमें कुछ ध्यान धरो ।९८।
यह कहकर धर्मदत्त मंत्रीने अपनी बोली बंद करी ।
तब मथन नामके मंत्रीने अपनी आवाज बुलंद करी ।।९९।।
यह मथन और कोई नहिं था, काष्ठांगार का साला था ।
बहनोई की सत्ताके कारण दुष्ट बड़ा मतवाला था ।।१००।।
बोला ओ बूढे मंत्री ! तू क्या जाने ऐसी बातों को ।
किस तरह, सहन कर, सकता है कोई अहेतु आघातों को ।१०१।
वह देव, अवज्ञासे क्रोधित हो इनपर ही यदि वार करे ।
तो मूर्खवता उस हालत में क्या राजभक्ति उपचार करे ।१०२।
महाराज! हमारी राय यही, दैवी आज्ञा पालन करिये ।
अतिशीघ्र प्रजाका कष्टहटा, यशको अपनेमस्तक धरिये ।।१०३
बोला तब काष्ठांगार- मंत्रियों! बस अब यही करेंगे हम ।
बोला विरुद्ध यदि कोई भी उसहीको काट धरेंगे हम ।।१०४।।
उठ गये सचिव सब शीघ्र सोच करते भविष्य को बातों का ।
पर क्या उपाय कर सकते थे, उसके जहरीली घातों का ।१०५।

।। दोहा ।।

सचिवाधमने शीघ्र ही भेजी सैन्य सजाय ।
'सत्यंधर का वध करो' आज्ञा यही सुनाय ।।१०६।।
अब पाठक ! सुनिये जरा सत्यंधर का हाल ।
जिन्हें न कुछ भी ज्ञात था यह दुष्टों का जाल ।।१०७।।

विजया संग बैठे हुए करते मनोविनोद ।
अब भी नहिं छूटे जरा वे आमोद प्रमोद ॥१०८॥

× × ×

जब द्वारपालने आकर खबर सुनाई ।
महाराज विपद की घटा शीश चढ आई ॥१०९॥
जंगी सेना ने राज महल को घेरा ।
निज पदा घात से प्रांगण सर्व उकेरा ॥११०॥
अति गर्जन तर्जन करते सर्व सिपाही ।
कहते हैं नृप की होगी आज सफाई ॥१११॥
महाराज ! शीघ्र ही उचित उपाय बताओ ।
जैसे तैसे दुष्टों को शीघ्र हटाओ ॥११२॥
ज्योंही ये शव्द सुने विजया महाराणी ।
मूर्छित हो भूपर पड़ी न निकली वाणी ॥११३॥
भूपति को तत्क्षण क्रोध नृपोचित आया ।
अति शीघ्र उन्होंने कर में खड्ग उठाया ॥११४॥
चलने को ऊद्यत हुआ देख रानी को ।
विषयों का रहा न लोभ परम मानी को ॥११५॥
शीतोपचार नहिं किया न नीर मंगाया ।
पर कुल रक्षा के हेतु विचार बनाया ॥११६॥
मूर्छित रानी को केकियंत्र में डाला ।
दी उड़ा गगन में खुदने खड्ग संभाला ॥११७॥

रणचंडी की जब धधक रही थी ज्वाला ।
आकर भूपति ने इसमें ईंधन डाला ॥११८॥
रे दुष्टों ! नमक हराम कहाने वालों ।
अपने रखक पर हाथ उठाने वालों ॥११९॥
संभलो ! अब देखो मृत्यु निकट है आई ।
जो तुमने ऐसे पथ में कदम उठाई ॥१२०॥
जब यों भूपति ने सेना को ललकारा ।
तब चलने लगा सभी का तेज दुधारा ॥१२१॥
थे धर्मदत्त मंत्री भूपाल सहायक ।
थे राज भक्त सेना के वे ही नायक ॥१२२॥
पर वे सेना संगठित न कर पाये थे ।
जल्दी में कुछ ही सैनिक ला पाये थे ॥१२३॥
कर दिया रणांगण सर्व शत्रु से खाली ।
इक बर तो उनने अपनी शान बचाली ॥१२४॥
पर शीघ्र अन्य सेना द्विगुणित हो आई ।
अब भी उनने निज भक्ति प्रगट दिखलाई ॥१२५॥
आहत थे भारी घाव लगे थे तन में ।
पर भूल रहे थे स्वामि भक्ति की धुनमें ॥१२६॥
दोनों हाथों में ही उनके मोदक था ।
जीवन में यश, मरने में स्वर्ग निकट था ॥१२७॥
दे दिये प्राण, पर पीठ नहीं दिखलाई ।
इस भक्ति-त्याग से स्वर्ग भूमि जा पाई ॥१२८॥

नृपने अपना भुजबल था आज दिखाया ।
राजत्व तेज का अद्भुत पाठ पढ़ाया ॥१२९॥
जो पड़ा हुआ था खड्ग रक्तका प्यासा ।
उसने भी अपनी मेटी आज पिपासा ॥१३०॥
आघात हजारों लगे भूपके तनमें ।
पर खिन्न जरा नहिं हुए वीर निज मनमें ॥१३१॥
जब दृष्टि भूपने निज सेना पर डाली ।
पर दिखी वहां तो पृथ्वी खाली खाली ॥१३२॥
वीरों के शव थे, पड़े रक्त से रञ्जित ।
तन से मस्तक अतिदूर पड़े थे भंजित ॥१३३॥
शोणित सरिता वह रही अहो आंगन में ।
तत्क्षण विचार उठ गया नृपति के मन में ॥१३४॥
हा ! मेरी प्यारी प्रजा आज मुझ कारण ।
मेरे ही आगे पड़ी हुई निर्जीवन ,।१३५॥
हा ! हा !! मैंने यह क्या अनर्थ कर डाला ।
निज उपवन में ही हाय लगाली ज्वाला ॥१३६॥
अबला बालक बूढ़े मा बाप विचारे ।
मर जावेंगे अब हाय बिना ही मारे ॥१३७॥
कइयों ने मेरे कारण जान गमाई ।
कइयों की मैंने कर से करी सफाई ॥१३८॥
वह मूक प्रजा मेरी अब ताक रही है ।
सारी सृष्टि मुझ पर ही झांक रही है ॥१३९॥

हा ! हा ! अब मेरा कैसे हो निस्तारा ।
कोई मुझको वह मार्ग बतादो प्यारा ॥१४०॥
धिक्कार हाय इस घोर राज्य-लिप्सा को ।
धिक्कार अहो उस एक आत्मरक्षा को ॥१४१॥
जिसके कारण हा जान (प्राण) जाय लाखों की ।
रवि-तेज-दिदृक्षा मृत्यु होय आंखों की ॥१४२॥
बस क्षमा क्षमा ए प्रजा क्षमा मुझको दो ।
कुछ स्थान गोद में अहो क्षमा (पृथ्वी) मुझको दो ॥१४३॥
यों कर विचार भूपाल विरत हो रण से ।
छोड़ा ममत्व सब ऐहिक आकर्षण से ॥१४४॥
श्री णमोकारका जाप्य किया जिन मनमें ।
तज देह, स्थान पालिया स्वर्ग आंगन में ॥१४५॥
वह धर्मदत्त पहिले ही पहुंच चुका था ।
जो राजमृत्यु निज दृगसे लख न सका था ॥१४६॥

॥ दोहा ॥

राजमृत्यु जब होगई हुआ, युद्ध अवसान ।
अब पाठक सुनिये जरा, विजया का आख्यान ॥१४७॥

× × ×

जब केकी यंत्र उड़ा नभ में, विजया को निजमें लेकरके ।
जा गिरा शीघ्र ही मरघट में, अपना आवेश पूर्ण करके ॥
विजया पृथ्वी पर लुढ़क गई, गिरने से आहत हुई सही ।
पर अब तक भी वह दुःखपूर्ण मूर्छा थी उसकी गई नहीं ॥

देखो कर्मों की करणी को, जो अभी अभी थी महारानी ।
जिस पर सत्यंधर भूपति भी, पीते थे बार बार पानी ।१५०।
जिसके इंगित पर चलते थे, सैंकड़ों दास दासी अब तक ।
भूपति भी करते थे प्रयत्न, इसकी प्रसन्नता का भरसक ।१५१
सुमनों की शय्या सोती थी, जिसके पराग भी चुभता था ।
दीपक की मंद ज्योति से भी, नैनों से नीर निकलता था ।।
पंखों के कोमल झोंके से भी जिसके पीड़ा होती थी ।
रवि की किरणों के कारण तो, क्षणमें अधीर सी होती थी ।।
मुख पर मुस्कान न होती तो, तत्काल तहलका मचता था ।
इसका प्रस्वेद जहां गिरता, कइयों का खून निकलता था ।।
हा ! आज उसीको देखो तो है प्रेतलोक में पड़ी हुई ।
औरों को जाने दो, खुदके मन की संज्ञा भी उडी हुई ।।१५५
पानी लाकर छिड़के मुख पर, ऐसा नहिं कोई दिखता था ।
दुर्दैव आज अति कोपदृष्टि से, इसकी ओर निरखता था ।।
कंकर पत्थर पर पड़ी रही, मुरदों की बदबू आती थी ।
रवि किरणों भी अति उग्ररूप धर इसको आज तपाती थीं ।।
लूओं के गरम गरम झोंके, कंकर कंटक बरसा जाते ।
क्या आज इसे असहाय देउ, पृथिवी भी लगा रही लातें ।।
हां एक सखी अब भी इसकी भारी सहायता करती थी ।
रक्षा इस घोर विपद में भी बस एक 'असंज्ञा' करती थी ।।
यह तो हैं पाठक जान चुके, महारानी अन्तर्वत्नी थी ।
पर आज बनी सौभाग्य सुन्दरी की यह एक सपत्नी थी ।।

दुर्भाग्य दशा में ही इसने, मरघट में सुतको जन्म दिया ।
इस घोर वेदना के कारण,उपरोक्त सखीने कूच किया ।।१६१
आई संज्ञा दुःख देने को औ सारी याद दिलाने को ।
रानी को निज दुर्दैव दशा पर ज्यादा और रुलाने को ।।१६२
भयपूरित चंचल नेत्रों को, दश दिशमें उसने दौड़ाया ।
सर्वत्र भयंकरता का ही साम्राज्य देखने में आया ।।१६३।।
निज उदर रिक्त देखा समीप ही बालक था नव जात पड़ा ।
कोई सेवक नहिं दिखता था, तन में था उसके कष्ट बड़ा ।।
महाराज नजर आये न वहां,शय्या का नाम निशान न था ।
वहमहल न था वह स्थान न था,उसका प्यारा सामान न था ।।
कुछ भी नहिं था तब वह क्यों थी क्या सपने की यह थी माया ।
आंखों को मसला सबझूठा, पर अपने को सच्चा पाया ।।१६६।।
पानी से पृथक् मीन जैसे प्रतिपल अतिविकल तड़फती है ।
मृगयूथरहित जैसेकि मृगीव्याकुलहो दीन बिलखती है ।।१६७।।
वैसे ही अपने को पाया, असहाय अकेली मरघट में ।
न जाने क्या २ छिपा हुआ है, कर्मों के काले पट में ।।१६८।।
हे पुत्र ! अभागे ! क्या तुझको भी इसही समय जनमना था ।
मेरी इस दुःख दशा पर भी,हा आया तुझे तरस न था ।।१६९।
तू रानी के उरमें आया, मरघट में तेरा जन्म हुआ ।
माता असहाय पिता न यहां, सारा सौभाग्य विलुप्त हुआ १७०
अब कौन करे उत्सव तेरा थाली भी हा हा बजी नहीं ।
यह राजपुत्र का प्रसवकाल कुछ भी सामग्री सजी नहीं ।।१७१।

है कौन आज इस दुनिया में तेरा औ मेरा सा दुखिया।
सारे ही कर्मोंने आकर है बदला अपना आज लिया ।।१७२।।
तेरा यदि दीन भिखारी के भी घरमें आज जन्म होता ।
तो अरे अभागे इस प्रकार पत्थर पर तो न पड़ा रोता ।।१७३।
हा ! तुझको कौन उठावे अब दाई भी नजर नहीं आती ।
ए पृथ्वी ! क्या इस बालक पर भी तुझको दया नहीं आती ।।
इस भांति दुःखित विजया अपने सुतके कर्मों को रोती थी ।
आंखों से धार आंसुओं की पड़कर पृथ्वी को धोती थी ।।१७५।

। दोहा ।।

और देखिये विज्ञवर ! कर्म चक्र का योग ।
तत्क्षण प्रगट हुआ वहीं, शिशु का शुभ संयोग ।।१७६।।

× × ×

एक नारि कुछ आगे से आती दिखी ।
आ समीप बोली प्रिय बांधव सारिखी ।।१७७।।
महिषी, तजिये शोक रुदन नहिं कीजिये ।
शिशु पालनकी चिंता भी तज दीजिये ।।१७८।।
है बालक अति पुण्यवन्त निश्चय करो ।
है भविष्य उज्ज्वल इसका नहीं भय करो ।।१७९।।
होगा इसका पालन नृपसुत तुल्य ही ।
कर्दम में भी रहता रत्न अमूल्य ही ।।१८०।।

।। दोहा ।।

यों विजया को सांत्वना, दी देवी ने आय ।
धात्री कर्म किया सभी, दुःखमें पुण्य सहाय ।।१८१।।

रही यहीं यह तो कथा, आगे सुनिये आर ।
कैसी कैसी विश्वमें, होती विधि की दौर ।।

× × ×

इसही नगर में सेठ इक, रहते वड़े धनवान थे ।
था नाम 'गंधोत्कट' सभी श्रेष्ठी समाज प्रधान थे ।।१८३।।
होता न इनके पुत्र था, रहती इन्हें चिन्ता यही ।
निज पुत्र बिन सब शून्यसी, होती प्रतीत इन्हें मही ।।१८४।।
संयोगवश अवधीश मुनि, आये नगरमें एक दिन ।
वैश्येशने करदी निवेदन आधि मनकी कर नमन ।।१८५।।
पूछा प्रभो ! मेरे कभी सुत-जन्म होगा या नहीं ।
इस अतुल संपति का धनी कोई बनेगा या नहीं १८६।।
उत्तर मिला श्रेष्ठिन् ! तुम्हारे पुत्र तो होंगे सही ।
पर प्रथम सुत तुमको मिलेगा नियम से जीवित नहीं ।।१८७।।
ले मृतक सुतको किन्तु जाओगे यदा शमशान में ।
होगा तुम्हें तब प्राप्त जीवित पुत्र उसही स्थान में ।।१८८।।
तुमसृतक सुतको छोड़ जीवित को उठा लाना निडर ।
करना उसीकी पालना निज पुत्रवत् निजधाम पर ।।१८६।।
मुनिवचन से निश्चय किया वैश्येशने अपने हृदय ।
निज नारि नंदासे मगर यह भेद नहिं खोला सभय ।।१६०।।
नव मासके पश्चात् ही मृतपुत्र जन्मा सेठ घर ।
लेकर उसे तत्काल पहुंचे सेठ निश्चित स्थान पर ।।१६१।।
मृतपुत्र का करके बिसर्जन घूमने फिरने लगे ।

जीवित तनय की सब तरफ अन्वेषणा करने लगे ॥१९२॥
इसही समय देवी सहित विजया वहीं बैठी हुई ।
सुत का विचार करती हुई और वेगसे रोती हुई ॥१९३॥
यों सेठ को लख शीघ्र देवी ने कहा विजया ! सुनो ।
सुतका भविष्य सुधारना हो तो कठिन हृदया बनो ॥१९४॥
छोड़ो इसे इसही जगह, अति शीघ्र छिप जाओ यहीं ।
है पुण्यवन्त कुमार तुम, चिंता हृदय लाओ नहीं ॥१९५॥
लाचार रानी ने हृदय को, थाम कर यह ही किया ।
देवी कहे अनुसार सुतका, मोह मनसे तज दिया ॥१९६॥
हा पुत्र ! तुमको आज जननी भी यहीं है छोड़ती ।
दुःख दीनता से आज यह अपना कलेजा तोड़ती ॥१९७॥
जिसकर्म ने पैदा किया, वह ही करेगा पालना ।
जीवित रहो मेरी तरफसे, है यही शुभ कामना ॥१९८॥

॥ दोहा ॥

यह कह सुतको तज दिया, करके हृदय कठोर ।
देवी सह दिजया चली, शीघ्र दूसरी ओर ॥१९९॥

× × ×

सुत अन्वेषण करता जब पहुंचा गंधोत्कट ।
देखा शिशुको उठा लिया गोदी में झटपट ॥२००॥
अति सुन्दर बालक को लखकर हृदय लगाया ।
'चिरजीवोसुत' यही शुभाशीर्वाद सुनाया ॥२०१॥

हर्षित हर्षित लौट सेठ निज गृह पर आया ।
प्रिया-अंक में पुण्यवन्त सुतको बैठाया ॥२०२॥
अहो प्रिये ! जीवित को कैसे मृतक बताया ।
अति सुन्दर शिशु है देखो कितना मन भाया ॥२०३॥
देख सुनंदाने सुत को सचमुच ही जीवित ।
अमित मोद से हृदय लगाया होकर लज्जित ॥२०४॥
किया सेठ ने तत्क्षरण ही उत्सव अतिभारी ।
मंगलमय संगीत लगीं गाने पुरनारी ॥२०५॥
दुंदुभि पटह मृदंग ढोल नक्कारे बाजे ।
नृत्यकारिरणी नचैं सुवस्त्राभूषरण साजे ॥२०६॥
याचक जनको आज मिली भिक्षा मनमानी ।
चिरजीवो तव पुत्र सुनाई सबने बानी ॥२०७॥
जिन मन्दिर में जा प्रभुका अभिषेक कराया ।
भक्ति भाव से पूजा कर बहु द्रव्य चढाया ॥२०८॥
श्रेष्ठी का परिवार हुआ सबही आनंदित ।
हर्ष छटा वह सभी नहीं हो सकती वरिणत ॥२०९॥
एक सुज्ञ सेवक को भेजा नृपके मन्दिर ।
द्रव्य वस्त्र आभूषरण भिजवाये अति सुन्दर ॥२१०॥
समझा काष्ठांगार सेठने स्नेह जताया ।
राजभक्ति का है इसने आदर्श बताया ॥२११॥
हुआ आज मैं नृपति अतः उत्सव करवाया ।
सेवक द्वारा द्रव्य बहुतसा भेट भिजाया ॥२१२॥

हो प्रसन्न सम्मान किया सेवक का भारी ।
'राज्य श्रेष्ठि' की पदवी दी श्रेष्ठी को न्यारी ॥२१३॥

॥ दोहा ॥

अहो विश्व में पुण्यका सदा हरा है मूल ।
इस ही से प्रतिकूल भी, होजाते अनुकूल ॥२१४॥
'जीव, जीव' आशीष सुन, श्रेष्ठी ने सुत नाम ।
'जीवक' धर प्रगटित किया 'जीवंधर' गुणधाम ॥२१५

× ×

अब बढ़ने लगे कुमार सेठ के घर में ।
ज्यों बालचन्द्र दिन दिन क्रमकर अम्बर में ॥२१६॥
गोदी से गोदी फिरे न नीचे सोवे ।
हंसते हंसते भी कभी हर्ष से रोवे ॥२१७॥
आकर अनेक ललनाएं उसे खिलावें ।
चुपके से निज आंचल से दूध पिलावें ॥२१८॥
चूमें झट से अम्बर में उसे उछालें ।
लेकर गोदी में झूमर देकर चालें ॥२१९॥
नीराजन कोई करे तिलक दे काला ।
श्लाघा बहु करे 'सुन्दर' कह कोई बाला ॥२२०॥
यों हाथों हाथ कुमार वृद्धि को पावे ।
अब गोदी तज घुटनों से दौड़ लगावे ॥२२१॥
आ, आ कह छिपकर ताल बजावे बाला ।
घुड़ दौड़ लगावें उसी तरफ को लाला ॥२२२॥

कोई बाला, ऊंचे से चीज बतावे ।
तो महा पुरुष सम आप खड़े होजावें ॥२२३॥
चांदी की इक छोटीसी ठेलागाड़ी ।
गुड़काते फिरते फिरे अपूर्व खिलाड़ी ॥२२४॥
सम आयु नगर कुमार खेलने आते ।
उनके संग जा मिट्टी में दौड़ लगाते ॥२२५॥
सब बालक उन पर धूल खूब बरसाते ।
राज्याभिषेक सम ये आनंद मनाते ॥२२६॥
सबका मन मोहित कर हंस हंस गिर पड़ते ।
फिर उठे दौड़ माता के पांव पकड़ते ॥२२७॥
यों बाल्यकाल अतिलाड़ प्यार से बीता ।
सत्यंधरका यह पुत्र जागता जीता ॥२२८॥
इस बीच सुनंदाने इक सुत फिर जोया ।
नंदाढ्य नाम धर उसका हर्ष मनाया ॥२२९॥
नंदाढ्य और जीवंधर दोनों भ्राता ।
अति प्रेमी पलभर का वियोग नहिं भाता ॥२३०॥
इक रोज मित्र मंडल को लेकर संगमें ।
जीवंधर पहुंचे नगर बाह्य उपवन में ॥२३१॥
अब लगे खेलने खेल प्रजा राजा का ।
जीवकने स्वीकृत किया स्थान राजाका ॥२३२॥
कोई मंत्री कोई कुतवाल सिपाही ।
सैनिक सेनापति शरीर रक्षक शाही ॥२३३॥

वन गये पारिषद् प्रजा दूसरे बालक ।
दरबार लगा बैठे जीवक नरपालक ॥२३४॥
इस तरह खेल होता था न्यायशाली का ।
तत्काल शोर होजाता हर्षताली का ॥२३५॥

॥ दोहा ॥

अब पाठक सुनिये जरा, एक भिक्षु उस काल ।
छिपा हुआ था देखता, बच्चों का यह हाल ॥२३६॥

× × ×

जब स्नेह शील बच्चोंने था यों अपना खेल समाप्त किया ।
तरु ओट छोड़कर भिक्षुकने आ जीवंधरसे प्रश्न किया ।२३७।
ओ बच्चे ! जरा कहो तो कितनी दूर यहां से नगरी है ।
और नगर मध्य जानेवाली कौनसी यहां से डगरी है । २३८।
बोला तत्क्षण हंसकर जीवक तुम कितने पागल प्राणी हो ।
इतना भी नहीं समझ सकते तब तो पूरे अज्ञानी हो ॥२३९॥
नगरी के बच्चे खेल रहे फिर कितनी दूर नगरिया है ।
लड़के भगकर जारहे पूछते फिर भी कौन डगरिया है ।२४०।
इतना कह कर जीवकने सबको चलने का संकेत किया ।
उड़ गये शीघ्र पक्षीदलवत् सबने नगरी का मार्ग लिया ।२४१।
भिक्षुक जीवककी बातों पर रह रह कर विस्मय करता था ।
पद पद पर उसकी चतुराई की छाप देख जी भरता था ।२४२।
कैसा अच्छा था खेल किया उत्तर भी कितना ठीक दिया ।
करते विचार यों भिक्षुकने भी पुरकी ओर प्रयाण किया ।२४३

भिक्षार्थी घर घर घूम घूम गंधोत्कट के घर पर आया ।
ऊपर जाकर भोजन करलो यह गंधोत्कटने फरमाया ।।२४४।।
जब पहुंचा भिक्षुक ऊपर तो, जीवंधर को आगे पाया ।
जोवक उसको लखकर बोला, बाबा आया बाबा आया ।२४५।
तत्क्षण पाचक को दी आज्ञा, बाबाको भोजन करवाओ ।
हमको भी भूख लगी है झटपट हलुआ पूड़ी ले आओ ।।२४६।।
तत्क्षण आज्ञा पालन करके, पाचकने भोजन परुस दिया ।
दोनों ही ने अपना अपना, भोजन करना प्रारंभ किया ।२४७।
बालक का स्वाभाविक गुण है,रोये बिनउस को चैन कहां ।
बस शीघ्र रुदन प्रारंभ किया,जोरोंसे हल्ला मचा वहां ।।२४८।
यह गरम गरम कैसे खायें,हमसे नहिं खाया जाता है ।
हम नहिं खायेगा बस अम्मा को जाकर हाल सुनाता है ।२४९।
उठते उठते को पाचकने, कर पकड़ शीघ्र ही बैठाया ।
बस बैठाते ही और आपने, अपने स्वर को फैलाया ।।२५०।।
अब भिक्षुक से नहिं रहा गया, बोला कुमार ! तुम बड़े चतुर ।
फिर क्यों बिगाड़ते हो आंखें यों जोर जोरसे रोरोकर ।। २५१।
कुछ तो बतलाओ रोनेसे क्या हाथ तुम्हारे आता है ?
रो रोकर खाने से उल्टा भोजन खराब हो जाता है ।।२५२।।
जीवकने रोना बंद किया, बोला बाबाजी भली कही ।
क्या इतने बूढ़े होकर भी रोने के गुणसे विज्ञ नहीं ।।२५३।।
रोने में बहुत बड़े गुण हैं, देखो मैं कुछ बतलाता हूं ।
खाने को थोडा बंद करो तो सुनिये अभी सुनाता हूं ।।२५४।।

कफ जमा हुआ हो छातीमें, तो रोने से गिर पडता है ।
आंखों में मैल जमा हो तो,आंसू के संग निकलता है ।।२५५।।
नासाका मैल निकलता है, भोजन सुपच्य होजाता है ।
शिरमें चक्कर हो चढ़ा हुआ,तो सिर हलका होजाता है ।२५६।
आंतें सब ढीली होती हैं,तकलीफ न कुछ भी होती है ।
फिर और देखिये रोने से, मनुहारें कितनी होती हैं ।।२५७।।
सारे घर को जब तंग करें, मनमानी चीजें पाते हैं ।
कहिये बिन रोये कौन हमारे, लिये खिलौने लाते हैं ।।२५८।।
यों हैं अनेक गुण रोने में, कहिये कैसे मैं रोउं नहीं ?
अब आप कीजिये भोजन यह,ठंडा न अरे ! होजाय कहीं २५९।
भिक्षुक ये सब बातें सुनकर, मन ही मन पिघला जाता था ।
अबऔरदेखिये भिक्षुक भी,क्या गजब ढहाता जाता था ।२६०।
जितना भोजन रक्खा जाता,सबको समाप्त कर देता था ।
बस'और परोसो और परोसो,'यह ही टेर सुनाता था ।२६१।
सारी सामग्री पूर्णकरी,पर 'लाओ' की रट जारी थी ।
पाचक को यह सब देख देख, होती हैरानी भारी थी ।।२६२।।
जीवंधर भी आश्चर्य चकित, यह बात देखते जाते थे ।
न जाने कबसे भूखा है, यह सोच दया मन लाते थे ।।२६३।।
सामग्री सारी पूर्ण हुई तो, पाचक को आदेश दिया ।
'तुम और बनाओ सामग्री' बाबा भूखा है देख लिया '।२६४।।
'तब तक बाबाजी यह खाओ' यों कह जीवकने निज करसे ।
अपनी थाली से ग्रास उठा,कुछ भिक्षुक के करमें पुरसे ।२६५।

॥ दोहा ॥

अहो पुण्य की विश्व में, महिमा अपरंपार ।
इसही से थिर समझिये, यह अस्थिर संसार ॥२६६॥
जीवधर के हाथका, खाया ज्योंही ग्रास ।
त्योंही भिक्षुकराजकी मिटी उदर की त्रास ॥२६७॥
मुख मंडल पर छारही, असंतोषकी छाप ।
बदल गई संतुष्टि में, वह अपने ही आप ॥२६८॥
पुण्यवान इस कुंवरने, किया बड़ा उपकार ।
अब मैं वापिस क्या करूं, इसका प्रत्युपकार ॥२६९॥
यों विचार करते हुए, करके भोज्य समाप्त ।
उतर महलसे आ हुए, गंधोत्कट को प्राप्त ॥२७०॥
बोले श्रेष्ठिन् ! आपके, जीवक कुंवर सुजान ।
शुभ लक्षणसे दीखते, पुण्यवान गुणखान ॥२७१॥
मेरी भस्मक व्याधि है, हुई आज ही दूर ।
जीवंधर के हाथका, खा भोजन रसपूर ॥२७२॥
मेरा तो इस कुंवर ने, किया बड़ा उपकार ।
मैं भी करना चाहता, किंचित् प्रत्युपकार ॥२७३॥
बस इच्छा अब एक है, दीजे मुझे कुमार ।
श्रम करके अब दूं इन्हें, विद्या का भंडार ॥२७४॥
बुद्धिमान हैं चतुर हैं वैसे ही हैं बुद्ध ।
शास्त्र निकष संयोगसे, होंगे अति संशुद्ध ॥२७५॥

भिक्षुराज की बात यह, कर सहर्ष स्वीकार ।
श्रेष्ठी ने तत्काल ही, बुलावाया सुकुमार ।।२७६।।
बोले जीवक! आज तुम, जाओ गुरु के पास ।
चित्त लगाकर कीजियो, इनसे विद्याभ्यास ।।२७७।।
भक्ति विनय गुरुदेव की, करना पूर्ण सदैव ।
ज्ञान-उदधि में नाव है, केवल गुरु की सेव ।।२७८।।
गुरुसेवा के योग से, मिले सहज ही ज्ञान ।
ज्यों धनिकों की भक्ति से, बने रंक धनवान ।।२७९।।
यों समझा सुकुमार को, भिक्षुराज के साथ ।
विदा किया वैश्येशने, धर कर सिर पर हाथ ।।२८०।।
गुरु आश्रम में पहुँच के, पढ़ने लगे कुमार ।
दिन दूना बढ़ने लगा, विद्या का भण्डार ।।२८१।।
जिस पर गुरु की हो कृपा, उसको क्या दुःसाध्य ?
सब कुछ देने के लिए, होजाते गुरु बाध्य ।।२८२।।
विनयवान के चित्तमें, विद्या का आवास ।
गुरुसेवा के योगसे, होवे शीघ्र प्रकाश ।।२८३।।
बाल्यकाल जो नहिं करे, विद्या का अभ्यास ।
पद पद पर अपमान का, पाते हैं वे त्रास ।।२८४।।
गुदड़ी भीतर लाल है, निर्धन विद्यावान ।
शशि कलंक सम जानिये, धनिक पुत्र अज्ञान ।।२८५।।
इह लोक उज्ज्वल करे, सद्गुण विद्यावान ।
मात तात पुर वंशका, विद्या से सम्मान ।।२८६।।

विद्या बिन सुत समझिये, काणी आंख समान ।
आंख कार्य नहिं कर सके, अन्येन्द्री उस स्थान ।।२८७।।
जीवंधर करने लगे, अनुपम विद्याभ्यास ।
दिन दूना बढ़ने लगा, उनका ज्ञान प्रकाश ।।२८८।।

इति श्री छन्दोबद्ध जीवधरचरित्र में जीवधर का
विद्यालाभ नामका प्रथम लम्ब पूर्ण हुआ ।।१।।
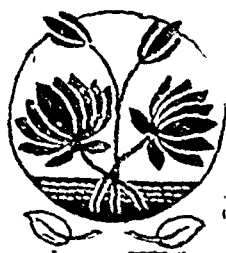
द्वितीय अध्याय

प्रणमन करूं जिनराजको, शुभ भक्तिसे वंदन करूं ।
मस्तक धरूं चरणन पड़ूं, मैं नेत्र निष्पंदन करूं ।।१।।
मन में सदा जिनराजका, शुभ ध्यान से चिंतन करूं ।
जीवकच्चरित गुणमाल में, शुभ पद-सुमन ग्रन्थन करूं ।।२।।
सुकुमार जीवंधर सु मन से, गुरु-निकट पढ़ने लगे ।
निज बुद्धि औ गुरभक्ति बलसे, ज्ञानगिरि चढ़ने लगे ।।३।।
व्याकरण छंद पढ़े, पढ़े बहु तर्क शास्त्र विशाल हैं ।
रस रीति गुण पूरित पढ़े, साहित्य काव्य रसाल हैं ।।४।।
नाटक पढ़े चम्पू पढ़े, और गद्यकाव्य पढ़े सभी ।
इतिहास औ भूगोलके, देखे बहुत से ग्रन्थ भी ।।५।।
ज्योतिष पढ़े वैद्यक पढ़े, देखे रसायन शास्त्र हैं ।
औ मुख्यकर नृपनीति के, सिद्धान्त भी अतिमात्र हैं ।।६।।
शस्त्रादिके सब हाथ सीखे, पैंतरे सीखे सभी ।
चक्रादि व्यूह रचा रचा कर, भेदने सीखे तभी ।।७।।
शम दाम दंडरु भेदके, सब भेद हृदयंगम किये ।
शासन प्रणाली के तरीके, ज्ञात सब ही कर लिये ।।८।।
वाहन चलाना बाणवर्षण, वीरता के काम भी ।
औ युद्ध में पीछे न हटना, धीरता के काम भी ।।९।।
भाषणकला लेखनकला, सीखी विशेष प्रयत्न से ।
मंत्रादि भी सीखे सभी, सुकुमारने सद् यत्न से ।।१०।।

संगीत शास्त्र पढ़ा अनूपम, वाद्य यंत्र विशेष हैं ।
नर्त्तनकला चित्रणकला सीखी मनोज्ञ अशेष हैं ।।११।।
रतिशास्त्र के सब भेद जाने, अंग लक्षण ज्ञान भी ।
पशुपक्षिकृत शकुनादिके, फल शुभाशुभ जाने सभी ।।१२।।
अग्निप्रवेशन जलधिगाहन, यंत्र निर्मापण कला ।
बहुभेषधारण जनप्रतारण, पटु परम रूपण कला ।।१३।।
वाणिज्य औ व्यवसाय, असि कृषिजीविका के हेतु भी ।
सब सभ्यताके निगम सीखे, विश्वसरिता सेतु भी ।।१४।।
अनुयोग चारों को पढ़ा, स्याद्वाद के सिद्धान्त को ।
जाना अहिंसावाद औ, विधिवाद अति दुर्दान्त को ।।१५।।
जाना धरम औ पापका, सब भेद योग्यायोग्य का ।
जाना सुभक्ष्याभक्ष्य, सीखा भेद भोग्याभोग्य का ।।१६।।
पढ़ लिया श्रावक धर्म, अवगत कर लिया यति धर्म भी ।
जाना सभी संसार की, निःसारता का मर्म भी ।।१७।।
निज आत्महित करना, जलाना ध्यानमें वसुकर्म को ।
संसार दुःखसे पार पाना, प्राप्त करना शर्म को ।।१८।।
ऐसी अनेक प्रकार, विद्यायें कलायें सीखकर ।
जीवक भले लगने लगे, जैसे शशांक कलाढ्यवर ।।१९।।
ज्यों पूर्व बातें याद आतीं, मात्र एक निमित्त से ।
त्यों सर्व विद्यायें मिलीं, आकर कुंवर के चित्त से ।।२०।।
जब हृदय अंबुज खिल उठा, शुभ ज्ञान रवि आलोक से ।
तब कला सर्व पराग होकर, जम गई बेरोक से ।।२१।।

तों सर्व गुण संपन्न देखा, सुगुरुने सुकुमारको ।
उनका हृदय कर पार, पहुँचा हर्ष पारावार को ॥२२॥
तब एक दिन एकान्त में, गुरुदेव प्रमुदित चित्त से ।
सुकुमार से कहने लगे; हे कुंवर ! सुनिये चित्त से ॥२३॥
कहता विचित्र चरित्र हूं, तुम ध्यान से सुनना जरा ।
कैसा दयावह चित्र है, मनसे उसे मनना जरा ॥२४॥
विद्याधरों के देश में, इक लोकपाल नरेश था ।
सुगुणेश जन प्राणेश विद्याधीश था विबुधेश था ॥२५॥

× × ×

एक दिवस वह भूप महल के शिखर पर ।
खड़ा हुआ था देख रहा नभ नीरधर ॥२६॥
था वह प्रावृषकाल घनाघन की घटा ।
दिखा रही थी सांझ समय अनुपम छटा ॥१७॥
गजकुमार ज्यों दौड़ लगाते भौममें ।
त्यों घन छोटे मोटे भ्रमते व्योम में ॥२८॥
कभी बिछुड़ते जलधर आ मिलते कभी ।
कभी पटलवत्, पाटलवत् खिलते कभी ॥२९॥
अस्ताचलका सूर्य रश्मियां फेंककर ।
देता था इनमें अतिसुन्दर रंग भर ॥३०॥
इन्द्र धनुष आकार वनाता रम्य था ।
प्रावृष भूप प्रवेश द्वार वत् गम्य था ॥३१॥

इतने में इक अद्भुत घन पैदा हुआ ।
जिसे देख भूपति तत्क्षण हर्षित हुआ ॥३२॥
अति सुन्दर आकार महल का सा बना ।
सुन्दर शिखर समेत दिखा अति सोहना ॥३३॥
चाहा नृपने इसका (महल) चित्र उतार लूं ।
बनवा फिर प्रासाद इसी आकार लूं ॥३४॥
सुन्दरता की सीम बनेगा महल वह ।
जगती का आश्चर्य बनेगा महल वह ॥३५॥
यों विचार नृपने सेवक से शीघ्र ही ।
चित्रशलाका लाने की तत्क्षण कही ॥३६॥
पलक मारते आया सेवक शीघ्र ले ।
दृष्टि उठाई व्योम मध्य अब भूपने ॥३७॥
अहो ! बड़ा आश्चर्य महलका क्या हुआ ।
उड़ा लेगई अरे किधर तत्क्षण हवा ॥३८॥
छिन्न भिन्न होगया अनूपम महल था ।
एक वायु के झोंके में यह सहल था ॥३९॥
रही शलाका धरी हाथ की हाथ में ।
हर्म्य होगया ध्वस्त बात की बात में ॥४०॥
घन का तो नहिं चित्र खिचा, पर खिच गया—
विश्व, विश्व का रूप, हृदय पर खिच गया ॥४१॥
बना शलाका वही अभ्र, पट था हृदय ।
क्षणभंगुर आकार बना उस ही समय ॥४२॥

पलक मारते परिवर्तन होजायगा ।
यों समाप्त नट का नर्तन होजायगा ॥४३॥
धन वैभव ये शिखर ध्वस्त होंगे सभी ।
घन मंदिर यह ध्वस्त हुआ जैसे अभी ॥४४॥
किस पर करूं प्रतीति सभी नश्वर यहां ।
दिखता मुझको कोई भी नहिं स्थिर यहां ॥४५॥
मात पिता तो गये बची हैं नारियां ।
समझी मैंने इनको अपनी प्यारियां ॥४६॥
हा! हा! कितना भूला मैं अब तक रहा ।
अरिको समझा मित्र, मित्र-अरि बन रहा ॥४७॥
तन है मेरा शत्रु कैद मुझको किया ।
यह नारी तो है इस ही तनकी प्रिया ॥४८॥
शत्रुप्रिया सो मेरी कब हितकारिणी ।
मेरी प्यारी नहीं अरे यह कामिनी ॥४९॥
अरे बेडियां सोने की पगमें पड़ीं ।
देख मनाता मैं मनसे खुशियां बड़ी ॥५०॥
भूला अपना रूप बना बहुरूपिया ।
बना बना कर भेष भ्रमण जगमें किया ॥५१॥
बना कभी मैं रंक कभी राजा बड़ा ।
किया कभी अतिरुदन कभी शासन कड़ा ॥५२॥
कभी नारि, नर कभी, कभी तिर्यंच भी ।
श्वभ्र भोग कर भी नहिं चेता रंच भी ॥५३॥

बना अनेकों वार देव वैभव धनी ।
यों पर्यायें धरीं अरे ! मैंने घनी ॥५४॥
पर सोचा नहिं कभी 'अहो मैं कौन हूं' !
वैभव है यह कौन और मैं कौन हूँ ॥५५॥
मैं तो हूँ बिनरूप नहीं बहुरूपिया ।
यह पागलपन है मैंने कैसा किया ॥५६॥
मेरी नगरी कौन ? विभव मम कौन है ?
कौन बंधु परिवार ? कौन मम भौन है ॥५७॥
इनको मैंने कभी नहिं सुधि ली अरे !
इस परत्व में भाव आत्मता के करे ॥५८॥
यों विचार कर भूप महल से अवतरा ।
अपना शासन भार पुत्र के शिर धरा ॥५९॥
मांग क्षमा, कर क्षमा सभी को चित्त से ।
चला तोड़कर मोह; धाम, तिय, वित्त से ॥६०॥
छोड़ परिग्रह सर्व महाव्रत आदरे ।
करे तपस्या घोर ज्ञान दर्शन धरे ॥६१॥

॥ दोहा ॥

विधि गति कुंवर विचित्र है, जान सके नहिं कोय ।
इसके वश इस विश्व में, होनी हो सो होय ॥६२॥
किसी अशुभ के उदय से, इसके अहो कुमार ! ।
तन में पैदा होगई भस्म व्याधि दुःखकार ॥६३॥

× × ×

यह व्याधि भयंकर है जीवक, जितना खावे सब भस्म करे।
नहिं भूख शांत होपाती है,भोजन मनमाना क्यों न करे ।।६४।।
मुनि के आहार को शास्त्रोंमें, वत्तीस ग्रास उत्कृष्ट कहे ।
इसके विरुद्ध आचरण करे तो, कहो धर्म किस भांति रहे ।६५।
मुनि धर्म विकट है जीवंधर, इस पर चलना अतिदुष्कर है ।
विपरीताचरण न क्षम्य जरा,ऐसा यह भेष दिगम्बर है ।।६६।
इसमें रह करके रोग शांतिका, कोई दिखा उपाय नहीं ।
तव भेष छोड़के उदरपूर्तिकी, करनी खोज कहीं न कहीं ।६७।
जैसे पृथ्वी का राज्य तजा, त्यों तपसाम्राज्य विसार दिया ।
तज नग्न रूपको अब उसने,छलछद्मरूप स्वीकार किया ।।६८।।
आपत्तिकाल मर्याद नहीं, यह नीति शास्त्र वतलाते हैं ।
मुनि धर्म इसे सुनता न कभी,यों जैन शास्त्र फरमाते हैं ।।६९।।
वस अव उसने छुट्टी पाई, मनमाना भोजन करता था ।
इस उदरके अद्भुत गढ्डे को,ज्योंत्योंकर अव वह भरता था७०
चारित्र भष्ट यों हुआ किन्तु, अन्तर्सम्यक्त्व नहीं छोड़ा ।
वस उदर शांति के लिये विश्वमें, फिरता था दौडा दौडा ।७१
संन्यासी भेष धरा कवही, कवही शिवजी का भक्त वना ।
औ कभी विष्णुकी पूजामें ऊपर से अति आसक्त वना ।।७२।।
ओने टोने जादू मंत्रोंसे, अवलाओं को ठगता था ।
पाखंड वताने को कवही, वह रात रात भर जगता था ।।७३।।
वहुतेरा भोजन लेकरके, चौडे में खाने लगता था ।
टोकार अनेकों लगती थी, पर रोग नहीं वह भगता था ।।७४।

यों भ्रमता भ्रमता एक दिवस,इस राजपुरी में आ निकला ।
नगरी के बाहर उपवनमें, फलखाता था छिपकर इकला ।७५।
उससमय नगरके बच्चोंको,ले संग सुनो तुम जीवंधर ।
क्रीड़ा करने को आये थे, सो उसने देखी सब छिपकर ।।७६।।
राजा बनकर जो खेल किया, उसको देखा आश्चर्य किया ।
फिर नगर मार्ग पूछा उसने, तुमने उत्तर था खूब दिया ।७७।
वह दृश्य याद होगा तुमको,जब भोजन करने आया था ।
तब सारे घरका भोज्य तुम्हारा, उसने तत्क्षण खाया था ।७८।
तुमने अपने करसे लेकर, जो ग्रास परोसा था उसको ।
बस वही ग्रास था पुण्यमयी,खाकर वह तृप्त हुआ जिसको ।७९।
तुमने भारी उपकार किया, कुछ बदला तुम्हें चुकाने को ।
उसने संकल्प किया तुमको,अतिशय विद्वान् बनाने को ।८०।
सो तुम्हें आज विद्वान् बनाकर, उसका हृदय प्रसन्न महा ।
यह वृत्त तुम्हारे गुरुका है, जो अब तक था प्रच्छन्न रहा ।८१।
अब मेरी इच्छा है जाकर, फिरसे मैं आत्मोद्धार करूं ।
छेदोपस्थापन करके मैं, अपना चारित्र सुधार करूं ।।८२।।
गुरुवर का यह वृत्तान्त जान, जीवक सन्तुष्ट हुआ भारी ।
विनयावनम्रता ही अनुमति, थी यही शिष्टता सुखकारी ।८३।
बोले गुरुवर जाते जाते, मैं एक बात फिर कहता हूँ ।
जो कोई नहीं जानता है, उसको कह देना चहता हूँ ।।८४।।
तब सत्यंधर की पूर्व कथा, गुरुदेव कही जीवंधर से ।
और काष्ठांगार कृतघ्नी है, यह भी बतलाया ऊपर से ।८५।

विजया रानी के पुत्र तुम्हीं, सत्यंधर के सुत हो सच्चे ।
गंधोत्कट ले आया था जब, तुम एक दिवस के थे बच्चे ।।८६।।
इत्यादि कथा जब गुरुवर ने,जीवक से कर विस्तार कही ।
बस भभक उठी कोपाग्नि तभी,जो अद्यावधि थी छिपी रही८७
है खेद, खेद यह भेद आज तक,मैंने कभी नहीं जाना ।
गुरुदेव उचित था पहिले ही, यह भेद आपको बतलाना।।८८।।
अब तक तो इस हत्यारे का,मैं नाश कभी का कर देता ।
ऐसे अन्यायी का पृथ्वी से, भार कभी का हर लेता ।।८९।।
पर खैर ! आज ही सही इसे मैं, कलही मजा चखा दूंगा ।
गुरुदेव आपकी शिक्षाका, उपयोग यहीं दिखला दूंगा ।।९०।।

।। दोहा ।।

यों युद्धार्थी कुंवर को, लख कांपे गुरुराज ।
हा अनर्थ हो जायगा, ना जाने क्या आज ।।९१।।

× × ×

बोले जीवंधर ! धीर धरो, वह समय स्वयं आजावेगा ।
अपनी करणी का कडुआ फल, समझो अवश्य यह पावेगा ।९२।
यह माना तुम हो क्षत्रि-पुत्र, जोशीला खून उबलता है ।
हे पुत्र! किन्तु अविचारित कृतिका फल अच्छा नहिं मिलताहै९३
कुछ धैर्य धरो, कुछ धैर्य धरो, संगठित करो अपने बलको ।
होवोगे सफल अवश्य किंतु, यह समझो आज नहीं कलको ।९४

॥ दोहा ॥

गुरु के इस उपदेश का, उलटा पड़ा प्रभाव ।
बोला जीवक शीघ्र ही, उग्ररूप धर भाव ॥६५॥

× ×

गुरुदेव ! आप क्या कहते हैं किस तरह चित्तमें धैर्य धरूं ।
अन्यायी अरि आनन्द करे, मैं बैठा यह सब सहन करूं ॥६६॥
माना अपनी करणी का फल, पायेगा वह अवश्य करके ।
यदि यही हुआ तो गुरो ! किया, क्या मैंने शक्ति प्राप्त करके ६७
होना होगा सो ही होगा, यह तो अतीव कायरता है ।
अविपाक निर्जरा बिना गुरो ! कब कौन मोक्षपासकता है ।६८
अरिनाश कार्य में क्या विचार, लंबा-चौड़ा करना पड़ता ।
गुरुदेव विचारों से ही तो, यह जोश हाय ढीला पड़ता ।६९।
कहते ऋण औ शत्रु कभी, मानव के नहिं बढ़ने चहिये ।
अतिशीघ्र नष्ट इनको गुरुवर, लगते हि दाव करने चहिये ।१००
यह आज आप क्यों कायरता की शिक्षा मुझको देते हैं ।
कर्त्तव्य मुझे क्यों आज गुरो ! नहिं पालन करने देते हैं ।१०१।
मेरा अब खून उबलता है, कोपानल बढ़ता जाता है ।
जा अभी दुष्ट को काट धरूं, मनमें विचार यह आता है।१०२।
बलका क्या संग्रह करना है, बस कृपा आपकी काफी है ।
आज्ञा देकर देखिये भुजायें, क्या कर कार्य दिखाती हैं।१०३।
बस साम दाम औ भेद नीति का, अब अवलंब नहीं करना ।
इक दंड नीति ही आश्रय है, गुरुदेव ! विलंब नहीं करना ।१०४

॥ दोहा ॥

जब देखा इस रीति से, होत, नहिं कुछ काम ।
तब बोले गुरुदेव यों, जीवंधर को थाम ॥१०५॥

× × ×

हे पुत्र ! काम क्या करते हो, तुम को नहिं मनमें ध्यान जरा ।
बस क्रोध पटल पड़ गया बुद्धिपर,तुमको रहा न ज्ञान जरा१०६

तुम समझ रहे होंगे मनमें, तुमही बस एक बहादुर हो ।
पर अब समझो बिन सैन्यशक्तिके, तुम केवल इक दादुरहो १०७

यह उछलकूद अच्छी न सुनो, कुछ राजनीति का सोच करो ।
इस कोप दुष्ट के बस में हो, नहिं राजनीतिको मेट धरो ।१०८

पहिले अरिबलका ज्ञान करो, फिर अपनी ओर नजर डालो ।
इस जोश जोश में खुद अपनाही, नाश कभी नहिं कर डालो१०९

शत्रुके लाखों सेना है, तुम एक अकेले बालक हो ।
किस तरह चलाओगे लाखोंमें, अपनी टेढ़ी चाल कहो ।११०।

॥ दोहा ॥

बोले जीवंधर विहंसि, ठीक कही गुरुदेव ।
मुझको अब तक आपने, समझा बालक एव ॥१११॥

× × ×

पर खैर समझिये आपहि मनमें, मैं बालक से भी बालक हूं।
लेकिन गुरु आज्ञा का अब तक,मैं रहा सदा से पालक हूं ॥११२।

क्या ऐसे गुरु की सेवा से भी, मिलती रणमें विजय नहीं।
गुरुदेव यही निश्चय कीजे, मैं कुछ भी मनमें समय नहीं ११३
यदि विजय नहीं ले पाऊंगा, रणमें ही मारा जाऊंगा।
तो अच्छा ही है मैं कलंक से, तो स्वामिन्! बच जाऊंगा ११४
कैसे अपनी इन आंखों से, पितु के घातक को देखूं मैं।
बस आग भड़कती है स्वामिन्! कर स्मरण उसे मेरे मनमें ११५
लाखों क्रोड़ों सेनायें भी, मेरा बिगाड़ क्या सकती हैं?
हरि शावक के आगे, शृगाल सेना कितनी बढ़ सकती है ११६
गुरु भक्ति मेरे मनमें है, और पक्ष न्याय का है मेरा।
अन्यायपक्ष खंडित होगा कहता है यह निश्चय मेरा ।।११७।।

॥ दोहा ॥

किसी तरह नहिं मानता, जीवंधर को जान।
बोले गुरुवर युक्ति से, यही आखिरी बात ।।११८।।
अच्छा जीवक! तुम नहीं, सुनो अगर कुछ बात।
मन आवे सो ही करो, हम अरण्य को जात ।।११९।।
एक वर्ष गम खाइयो, करो न कुछ तकरार।
यही हमें दो शिष्यवर! गुरुदक्षिणा कुमार! ।।१२०।।
इतना कह कर चल दिये, गुरु बन को तत्काल।
शून्य सरीखा रह गया, जीवंधर बेहाल ।।१२१।।

× × ×

जब गुरुवर चल दिये दुखी हो, जीवंधर घर आया।
गुरुवियोगसे म्लान हुई थी, उसकी सुंदर काया ।।१२२।।

गुरुआज्ञा पालन करना ही, अपना ध्येय बनाया ।
क्रोधानलको ज्ञान सलिल से, उसने शांत बनाया ।।१२३।।

गुरुवियोग का दुःख बहुत था, किन्तु ज्ञान के बल से ।
कर उपशम अब जीवंधर, रहते थे भाग्य प्रबल से ।।१२४।।

सरस्वती, सौभाग्य लक्ष्मी, वरण कर चुकी इनको ।
अब यौवन लक्ष्मी ने आकर, घेर लिया सब तन को।।१२५।।

अति ललामता प्रगट हुई, स्वाभाविक सुंदर तन में ।
ज्यों मधु समय बसंत, लक्ष्मी से माकंदी बन में ।।१२६।।

ललनानयन भृंग अति लोभी गिर गिर कर पड़ते थे ।
सुमन गलित स्मित पराग के पानार्थी लड़ते थे ।।१२७।।

ललना हृदय चाहता था जीवक के दो दोसों को(भुजा को)।
हार बना कर पहनूं तब है सुन्दरतर मम उर को ।।१२८।।

अंगों से निकली पड़ती थीं, मादक सरिताएं सुन्दर थीं ।
कर मज्जन अतिप्रमुदितमनसे वनिताएं घर को जाती थी १२९

राजपुरी वनमें जीवंधर, वसंत नृप लगते थे ।
कामिनि के नेत्र कटाक्षों से, वे वीर नहीं डिगते थे ।।१३०।।

भ्रात सहित मित्रों की गोष्ठी, अमिल मोदसे होती ।
इस मंडल में जीवक थे, बहुमूल्य अलौकिक मोती ।।१३१।।

मित्र मुख्य पद्मास्य भ्रात नंदाढ्य अमित प्रेमी थे ।
मूर्तिमन्त जीवंधर के ये कुशल और क्षेमी थे ।।१३२।।

॥ दोहा ॥

यों जीवंधर का गया, हर्ष सहित कुछ काल ।
अब पाठक सुनिये अधिक, और नगर का हाल ॥१३३॥

× × ×

नगरी से गोधन लेय ग्वाल बन जाते ।
अति संख्या में गोधन को वहां चराते ॥१३४॥
यह नित्य कर्म है ग्वालों का बन जाना ।
गौ चरा फिरा कर सांझ समय ले आना ॥१३५॥
इक रोज व्याध कुछ आन पड़े उस वनमें ।
ग्वालों से गोधन छीन लिया इक क्षणमें ॥१३६॥
पीटा ग्वालों को ऊपर से फिर भारी ।
जा छिपे बनी में गायें लेकर सारी ॥१३७॥
तब रोते पड़ते ग्वाल राजगृह आये ।
रो रो कर सबने दुःख के हाल सुनाये ॥१३८॥
महाराज ! हमारा द्रव्य लुट गया सारा ।
हम दीनजनों का था बस वही सहारा ॥१३९॥
अब गोधन के बिन कैसे नाथ रहेंगे ।
हा, किस प्रकार यह संकट घोर सहेंगे ॥१४०॥
महाराज ! प्रजाके नाथ आप कहलाते ।
फिर क्यों नहिं हम दुखियों का दुःख मिटाते ॥१४१॥
व्याधों से गोधन शीघ्र हमें दिलवाओ ।
मरते ग्वालों को किसी भांति जिलवाओ ॥१४२॥

जब इस प्रकार ग्वालों ने रुदन मचाया ।
हंस पड़ा काष्ठ-अंगार वचन फरमाया ।।१४३।।
रे मूढ ग्वालगण ! क्यों इतने अकुलाते ।
इस तुच्छ बातसे इतने क्यों घबड़ाते ।।१४४।।
यों कह कर सेनाधीश बुलाया क्षणमें ।
कुछ सैनिक भेजो कहा, शीघ्र ही वनमें ।।१४५।।
तत्काल करी इक सेनाने तैयारी ।
पहुंची वनमें व्याधों पर आफत भारी ।।२४६।।
व्याधों ने भीषण हाथ दिखाये रणमें ।
कर दी सेना को छिन्न भिन्न इक क्षण में ।।१४७।।
दूजी सेना जब गई उसे भी मारा ।
तीजी चौथी को भी तत्काल पछाड़ा ।।१४८।।
अब तो गोपालक और अधिक घबड़ाये ।
तब शरण दौड़ कर पंचायत की आये ।।१४६।।
जुड़ गई ग्वाल पंचायत शीघ्र नगर में ।
थी चर्चा उनही बातों की घर घर में ।।१५०।।
सरपंच ग्वाल पति बना नंदगोपाला ।
कर्त्तव्य भार उसही पर सबने डाला ।।१५१।।
तब निश्चय करके नंद गोप ने मनमें ।
राजाज्ञासे घोषणा करी पुरजनमें ।।१५२।।

जो कोई वीर छुड़ा लावे गोधनको ।
निज पुत्री दूं सम्मान सहित उस जनको ॥१५३॥
फिर दूं दहेज में सात स्वर्ण की पुतली ।
वस यही घोषणा सर्व नगर में निकली ॥१५४॥

॥ दोहा ॥

सुन करके यह, घोषणा, जीवंधर सुकुमार ।
व्याध निवारण हेतु ही, हुए शीघ्र तैयार ॥१५५॥
वीर सखा समुदाय को, लेकर अपने साथ ।
जीवक वन को चल दिया, नमा प्रभू को माथ ॥१५६॥
जीवंधर के पुण्य का, था उत्कर्ष अपार ।
तिस पर पूरे कुशल थे, युद्ध कला में पार ॥१५७॥
कार्यक्षेत्र में प्रथम था, यह अवसर सुखकार ।
व्याध वर्ग को बांधकर, हुए मुदित सुकुमार ॥१५८॥
गोधन सकल समेट कर, व्याध दिये सब छोड़ ।
लख उदारता व्याध यह, पड़े चरण कर जोड़ ॥१५९॥
क्षमा उन्हें करके कुंवर, लेकर गोधन संग ।
आये पुर में सफल कर, अपनी प्रथम उमंग ॥१६०॥
नंद गोप अति हर्ष से, अपने प्रण अनुसार ।
निज पुत्री के व्याह को, हुआ शीघ्र तैयार ॥१६१॥
नृप सुत गोपकुमारि का, प्रथम विवाह न योग्य ।
यों जीवकने चित्तमें, किया विचार मनोग्य ॥१६२॥

स्वर्ण पुतलियों का नहीं, आया मनमें लोभ ।
यशोभार पद्मास्य पर, धरा सर्व अक्षोभ ॥१६३॥
बोले इनहीने किया, विजित व्याध समुदाय ।
हमतो केवल थे वहां इनके पृष्ठ सहाय ॥१६४॥
विवाह का अधिकार तो, है इनही को सर्व ।
सुहृद्-विजय को देखकर, है हमको अतिगर्व ॥१६५॥
गोपराज को इस तरह, कह जीवकने बात ।
पकड़ाया पद्मास्यको, गोविंदा का हाथ ॥१६६॥

इति श्री छन्दोवद्ध जीवघरचरित्र में जीवघर का
विद्यालाभ नामका द्वितीय लम्ब पूर्ण हुआ ॥२॥

तृतीय अध्याय

॥ दोहा ॥

प्रणमूं संभवनाथको, शिर नम बारंबार ।
जीवक जीवन चरित का, और करूं विस्तार ॥१॥
गोविंदा पद्मास्य का, हुआ प्रणय संबंध ।
इधर कथा कुछ और है, पाठक सुने प्रबंध ॥२॥

× × ×

इसही नगर में सेठ थे, श्रीदत्त नामा और ।
समृद्ध थे सब भांतिसे, नहिं द्रव्य का था छोर ॥३॥
पर वणिक पुत्र स्वभाव है, बैठे नहीं वेकार ।
जिस तिस प्रकार विदेश या, घर पर करे व्यापार ॥४॥
आना नहीं हो द्रव्य का, घरमें अगर कुछ और ।
तो सिर्फ व्यय से एक दिन, आता दिखेगा छोर ॥५॥
इस ही प्रकार विचार करके, श्रेष्ठिवर श्रीदत्त ।
प्रोहण भरा कर होगये, यात्रार्थ शीघ्र प्रवृत्त ॥६॥
ले और वणिक अनेक पुर के, संग श्रेष्ठि सुजान ।
सुमुहूर्त देख प्रयाण कीना, कर प्रभूका ध्यान ॥७॥
द्वीपान्तरों में पहुंचकर, सबने किया व्यापार ।
चातुर्ययुत क्रय विक्रयादिक, से भरे भंडार ॥८॥

बहुकाल रह कर सर्व जनने, की कमाई सार ।
निज देशको तब लौटने का, किया शीघ्र विचार ॥९॥
भर माल से प्रोहण पुनः, सब चल दिये निज देश ।
अति मुदित थे मनमें सभी, धारण किये शुभ वेष ॥१०॥
सु अपार आकूपार था, जिस मध्य प्रोहण जाय ।
जैसे कृषक तन में मुदित हो, यूक दौड़ लगाय ॥११॥
सर्वत्र जल अतिरिक्त कोई, वस्तु दृष्टि न आय ।
मकरादि पूर्ण महा उदधि, वह था भयंकर भाय ॥१२॥
वड़वाग्नियां लगती कहीं, तूफान उठते जोर ।
मकरादि टक्कर मारते, कब ही सुकाय कठोर ॥१३॥
उस विकट संकटयुत उदधि में, चला प्रोहण जाय ।
अब देखिये पाठक करम, कौतुक नया दिखलाय ॥१४॥
तूफान एक समीप ही में, उठ पड़ा तत्काल ।
यह देख नाविक गण सकल, तत्क्षण हुए बेहाल ॥१५॥
यह बिन विचारी विपद् आई, वणिक सब घबडाय ।
जीवन मरण का प्रश्न था, दिखता न कोई उपाय ॥१६॥
सारे प्रयत्न किये गये, कोई सफल नहिं होय ।
निश्चित मरण है सामने, दिखता सहाय न कोय ॥१७॥
झकझोर प्रोहण डगमगे, तूफान मारे जोर ।
बस हाय प्रभु ! रक्षा करो, यह मच रहा था शोर ॥१८॥
करने लगे सब ही वणिक, कारुण्यपूर्ण विलाप ।
होगा नहीं परिवार से अब, हाय हाय मिलाप ॥१९॥

× × ×

धन के लिये घर बार छोड़ा, जा विदेशों में पड़े।
मर जायेंगे अब हाय हम इस, उदधि में बेबस पड़े ॥२०॥
कैसी अशुभ वह थी घड़ी, घरबार छोड़ा था कि जब।
असहाय आकूपारमें, हम डूबते हैं हाय सब ॥२१॥
बच्चे हमारी राहमें, बैठे हुए होंगे सभी।
प्यारी हमारी नारियों को, कल नहीं होगा कभी ॥२२॥
माता पिता आशा लगा, बैठे हमारी राहमें।
होंगे सभी भाई बहिन भी, इस तरह की चाह में ॥२३॥
हा ! कौन अब यह बात, उनके कान में पहुंचाएगा।
प्यारा तुम्हारा जन कभी, नहिं लौट कर घर आएगा ॥२४॥
ऐसे अनेक विलाप करते, रुदन करते थे तभी।
तत्काल प्रोहण फट गया, जल में गिरे नाविक सभी ॥२५॥
किसको न कुछ भी ज्ञात था, है दूसरा नाविक कहां।
बहने लगे सब ही उदधि में, एक एक जहां तहां ॥२६॥
श्रीदत्त भी, दधि में पड़ा, व्याकुल हुआ था तैरता।
शुभयोग से तत्क्षण लखा, इक काष्ठ आता तरता ॥२७॥
अति शीघ्र हो आरूढ़ उस पर, तैरने कर से लगे।
शुभयोगसे कुछ कालमें ही, सेठ जा तटसे लगे ॥२८॥
हर्षित हुए कपड़े सुखाये, नमन जिनवर को किया।
विश्रांति पाने के लिए, अब शरण निद्रा का लिया ॥२९॥

जब भंग निद्रा का हुआ, इक मनुज को आता लखा ।
तत्क्षण सदय सब याद आये, साथ के प्रोहण-सखा ॥३०॥
हा ! क्या हुआ होगा बिचारे, उदधि में डूबे सभी ।
दिखता नहीं उन साथियों में, से यहां तो एक भी ॥३१॥
मेरे सभी प्यारे सहायक, हाय जब यों मर गये ।
ये प्राण मेरे भी निकल, तनसे नहीं क्योंकर गये ॥३२॥
किस भांति मुख दिखलाउंगा, मैं देशमें जाकर वहां ।
सब ही मिलेंगे और पूछेंगे, हमारा जन कहां ॥३३॥
दूंगा उन्हें मैं हाय ! उत्तर, किस तरह मुख से भला ।
सब ही कहेंगे यही सबको, मार कर आया चला ॥३४॥
नायक बना था मैं सभी को, साथ था मैंने लिया ।
पर हायरे दुर्दैव ! तैंने इस दशामें क्या किया ? ॥३५॥
यों चित्तमें उद्विग्न हो, श्रीदत्त चिन्ता कर रहा ।
तत्काल उस नरने निकट, आ विनयसे ऐसे कहा ॥३६॥
हे आर्य ! क्या मैं जान सकता, आप सज्जन कौन हैं ?
इस स्थान पर किस हेतु से, चिंतित विराजे मौन हैं ॥३७॥
यह प्रश्न सुन श्रीदत्त ने, कुछ भद्र उसको जान कर ।
सारा कथानक कह दिया, अच्छी तरह व्याख्यान कर ॥३८॥
समवेदना करके प्रकट, इस दुःखपूर्णाख्यान पर ।
बोला मनुज वह सभ्यता से, बात सुनिये श्रेष्ठिवर ॥३९॥
है कर्म गति अति वक्र कुछ भी, समझ में आती नहीं ।
इसकी प्रबलतामें किसी की, चाल चल पाती नहीं ॥४०॥

मेरे यहीं बस आप अब, मेहमान रहिये आज तो ।
फिर आ मिलेगा पुण्य से, वह सब अतीत समाज तो ।।४१।।
ऐसे अनेक प्रकार से, धीरज बंधा वैश्येश को ।
ले गया वह (जन) शीघ्र ही, विजयार्ध नाम नगेश को ।।४२
अति शुभ्र अभ्र समान यह, राजत धराधर देख कर ।
आश्चर्यचकित हुआ अमित, निज चित्त में वह श्रेष्ठिवर ।४३
रमणीयता गिरि की अलौकिक, कुछ कही जाती नहीं ।
यदि है दिदृक्षा स्वर्गभौमिक, तो चले जाओ वहीं ।।४४।।
करते विमानों में गमन, खेचर वहां के सर्व ही ।
बहुमूल्य माणिक मणि, प्रभृति निर्मित वहां की है मही ।।४५
देवांगना सम सुंदरी, विद्याधरी विचरे जहां ।
नभचर सुरेश्वर तुल्य, क्रीड़ा मग्न नित रहते वहां ।।४६।।

॥ दोहा ॥

यों गिरीन्द्र के शिखर पर, पहुंचे दोनों जाय ।
देख वहां की रम्य छवि, श्रेष्ठी बहु सुख पाय ।।४७।।

× × ×

तब बोला साथी हे श्रेष्ठिन् ! मैं अब इक कथा सुनाऊं ।
औ यथाशक्य अति दुखित, आपके मनका दुःख मिटाऊं ।।४८
विजयार्ध नाम है इस गिरि का, जिस पर इस समय खड़े हैं ।
उत्तर दक्षिण श्रेणी के स्वामी, खेचर बड़े बड़े हैं ।।४९।।
दक्षिण श्रेणी में देश एक, गांधार नाम अति सुन्दर ।
नित्यालोका नामा नगरी, बसती है जहां मनोहर ।।५०।।

हैं गरुड़वेग नामा खेचर, उसके शासक कहलाते ।
खेचर अनेक हैं बड़े बड़े, आ मस्तक जिन्हें झुकाते ।।५१।।
अति न्याय नीति से चक्रीवत्, खेचर पति शासन करते ।
धारिणी नाम धारिणी, पट्ट महिषी युत समुद विचरते ।।५२
उन दंपति के गंधर्वदत्तनामा कन्या अति सुन्दर ।
है सर्वकला संपन्न, सुशीला सुगुणा शीलधुरंधर ।।५३।।
बचपन से ही अति सुन्दर, थी उसकी लीलाएं सारी ।
निज विनयशीलता से लगती, थी सबही को अति प्यारी ।।५४
जब सरस्वती को उसने निज, उर अम्बुज में बैठाया ।
है सुरभि स्वर्ण भी एक जगह, यों जगती को बतलाया ।।५५
संगीतकलामें उसने की है, प्राप्त विशेष निपुणता ।
वीणावादन में अद्वितीय है, उसकी विदित प्रगुणता ।।५६।।
अब बाल्यकाल को त्याग, बालिकाने तारुण्य धरा है ।
उसका तन कंचन कुंभ यथा, लावण्य पियूष भरा है ।।५७।।
मादकता और सरसताने, उसमें मोहकता भर दी ।
पर शिक्षा औ सत्संगति ने, है लज्जा पैदा कर दी ।।५८।।
खेचर धरणी में खगपति ने, जब चारों ओर निहारा ।
उसके उपयुक्त मिला न कहीं, कोई भी राजदुलारा ।।५९।।
तब बड़े बड़े दैवज्ञ बुलाये, खेचरपतिने ज्ञानी ।
सम्मानित करके प्रश्न किया, है पंडितवर्ग प्रमाणी ।।६०।।
इस तनया का पति होनहार है, कौन धरामंडलमें ।
इस विद्याधर धरणी में, अथवा भूमिगोचरी दल में ।।६१।।

करके विचार दैवज्ञोंने तब, निश्चित बात सुनाई ।
हे देव ! सुता के योग्य सुवर, देता न यहां दिखलाई ।।६२।।
पर भूमिचारियों में अवश्य, कुछ योग ठीक मिलता है ।
महाराज ! क्षमा हो इस पुत्री का, भाग्य वहीं खिलता है।।६३
जो राजपुरी नगरी में वीणा, विजित इसे कर देवे ।
हे देव ! वही अति पुण्यवान् गह रत्न आपका लेवे ।।६४।।
यों कह दैवज्ञ गये नृपने, निज घर में बात विचारी ।
मुझ को बुलवा तत्काल कही, यह बात हृदय की सारी ।।६५।।
जब हुए केवली राजपुरी में, सागर सेन मुनीश्वर ।
उस समय बंदना करने को, हम भी थे गये वहां पर ।।६६।।
श्रीदत्त श्रेष्ठिवर मिले वहां थे, हमको एक विचक्षण ।
थे स्नेहशील अति हुए हमारे, मित्र वहीं वे तत्क्षण ।।६७।।
वे हैं विदेशमें, गये हुए, प्रोहण लेकर व्यापारी ।
अब आवेंगे वे शीघ्र लौट, संपदा कमा कर भारी ।।६८।।
हैं योग्य वे' ही उनही के सिर पर, भार हमें धरना है ।
ले आओ उनको किसी तरह, यह कार्य तुम्हें करना है ।।६९।।
आज्ञानुसार खेचर पति की, मैं चला यहां पर आया ।
था बहुत दिनों से ध्यान आपका, आज दृष्टि में आया ।।७०।।
तूफान उठाकर माया से, प्रोहण को मैंने तोड़ा ।
जब गिरे उदधि में काष्ठ दिखाकर इधर आपको मोड़ा ।।७१
इतना तो कष्ट अवश्य दिया, पर थी यह सारी माया ।
धोखा देकर मैं श्रेष्ठिवर्य, ले यहां आपको आया ।।७२।।

वे सभी आपके साथी सकुशल, पहुंचे राजपुरी हैं ।
कोई भी वस्तु किसी की भी, सागर में नहीं गिरी है ।।७३।।

अब आप क्षमा करके मुझ को, बस नित्यालोका चलिये ।
निज दुखित सुहृद् के हृदय खेद को, दर्शन देकर हरिये ।।७४।

।। दोहा ।।

सुनी श्रेष्ठिने यह कथा, हुआ मुदित अति मात्र ।
सर्व खेद भय दूर हो, स्वस्थ हो गया गात्र ।।७५।।

नित्यालोका नगरि को, 'धर' विद्याधर संग ।
चले श्रेष्ठिवर देखते, विधि के विविध हि ढंग ।।७४।।

× × ×

गरुड़वेग को हुई सूचना शीघ्र ही ।
आया सो भी हर्षित हो नगराग्र ही ।।७६।।
मिलकर दोनों मित्र हुए अति ही मुदित ।
हृदय कमल खिल गये मित्रको लख उदित ।।७८।।
मित्र तुल्य प्रिय वस्तु विश्व में कौन है ?
नयनरसायन हृद्-हर्षायिन कौन्न है ।।७६।।
श्रवरण सुधा इस नाम सिवा अरु कौन है ?
मित्र मिलन सम चंद न दूजा कौन है ।।८०।।
मात पिता सुत बंधु त्रिया प्रिय हैं सही ।
किन्तु मित्रवत् इनमें प्रियता है नहीं ।।८१।।
इनकी प्रियता में सर्वत्र हि स्वार्थ है ।
किन्तु मित्रका प्रणय सदा निःस्वार्थ है ।।८२।।

इनकी प्रियता रहती केवल सुक्ख में ।
रहता जन के संग मित्र ही दुःख में ॥८३॥
अमृत अनुपम अहो मित्र ! तुम हो सही ।
अस महिमा अब अधिक न कुछ जाती कही ॥८४॥
अहो भाग्य हैं आज मित्र दर्शन मिले ।
मुर्झाये मन कमल आज इकदम खिले ॥८५॥
यों अति हर्ष जताय खगेश्वर मित्र से ।
मिले मुदित अति होकर हृदय पवित्र से ॥८६॥
कुशल क्षेम कर ज्ञात नगर में ले चले ।
बहुत समय से आज मनोरथ हैं फले ॥८७॥
नगर सजाया गया अतीव उमंग से ।
हुई सजावट सर्व अनूपम ढंग से ॥८८॥
बड़े बड़े बाजार चौपड़ें हैं पड़ी ।
दोनों ओर विशाल हर्म्य श्रेणी खड़ी ॥८९॥
नीचे है बाजार अनूपम लग रहा ।
वैभव अमित अपार नहीं जाता कहा ॥९०॥
कहीं अनूपम वस्त्र थान के थान हैं ।
रत्नराशि लग रही कहीं बिन मान है ॥९१॥
स्वर्णाभूषण सजे हुए अनुपम कहीं ।
गजमुक्ता की लगी हुई लड़ियां कहीं ॥९२॥
गोटे और किनारी का सामान है ।
एक वस्तु की लगी अनेक दुकान हैं ॥९३॥

धान्य राशि अति पड़ी हुई गिरि तुल्य है ।
घृतकड़ाह हैं भरे यथा रसकूल्य हैं ।।६४।।
फल फूलों की बड़ी दुकानें हैं लगी ।
कहीं मिठाई बनी पड़ी रसमें पगी ।।६५।।
बड़े बड़े जिन मंदिर नभको चूमते ।
जिन्हें देखने शशि रवि निश-दिन घूमते ।।६६।।
शिक्षालय भिषगालय बने विशाल हैं ।
बनी अनेकों अन्नदान की शाल हैं ।।६७।।
नर नारिन से पूर्ण सदा बाज़ार हैं ।
स्थान स्थान पर खड़े व्यवस्थाकार हैं ।।६८।।
अति विशाल हैं महल सुश्रेष्ठी वर्ग के ।
मानों टुकड़े पड़े हुए हैं स्वर्ग के ।।६९।।
जगह जगह आनंद नगारे बज रहे ।
सभी महल बाजार अनूपम सज रहे ।।१००।।
कितनी शोभा कहें न कुछ जाती कही ।
होता था बस ज्ञात स्वर्ग की है मही ।।१०१।।
अनुक्रम कर जब राजमहल पर पहुंच गये ।
लख शोभा श्रीदत्त ठिठक कर रह गये ।।१०२।।
राजरानियां आईं सम्मुख शीघ्र ही ।
करी आरती मंगलमय मिल सर्व ही ।।१०३।।
इस प्रकार श्रेष्ठी को अति सत्कार से ।
गरुड़वेग ले गया महल में प्यार से ।।१०४।।

शुश्रूषा अति करी खगेश्वरने वहां।
सब कहने को स्थान ग्रंथ में है कहां ॥१०५॥
कुछ दिन बीते वहां राग औ रंग में।
आई जब कुछ समता प्रेम-तरंग में ॥१०६॥
तब खगपतिने श्रेष्ठी से सारी कथा।
करी निवेदन और कही मनकी व्यथा ॥१०७॥
बोला-यह सब कार्य आप ही कीजिये।
मित्रकार्य के लिये कष्ट शिर लीजिये ॥१०८॥
तब श्रेष्ठी ने गद्‌गद् हो वाणी कही।
अहो मित्र यह कार्य करूंगा मैं सही ॥१०९॥
तव तनया सो मेरी भी तनया हुई।
फिर इसमें है बात कष्ट की क्या हुई ॥११०॥
कीजे हमको मित्र बिदा अब शीघ्र ही।
जा निज देश उपक्रम करना सर्व ही ॥१११॥
खगपति ने भी अधिक नहीं आग्रह किया।
यह प्रस्ताव शीघ्र ही स्वीकृत कर लिया ॥११२॥

॥ दोहा ॥

गंधर्वदत्ता को करी, गमन हेतु तैयार।
अन्तःपुर में छागया, हार्दिक शोक अपार ॥११३॥

× × ×

आज जाती है गंधर्वदत्ता, यह सुनके हुई शोकतप्ता।
मात रुदन करे धैर्य हीना, जैसे आज हुई अतिदीना ॥११४॥

प्यारी पुत्री मुझे छोड़ जाती, कैसे धीरज धरे मेरी छाती ।
हाय तुझ बिन मैं कैसे जिऊंगी,किसको देखके पानी पिऊंगी११५
हाय जन्म त्रिया का भी क्या है ? जिसमें सर्वत्र संकट भरा है ।
जो भी आवे वही दुख सहना,एक शब्द भी मुख से न कहना११६
पति चाहे हो रूपी चाहे कुरुपी, उसको मानो सदैव अनूपी ।
सारी उसकी अनीति सहोतुम,उलटाशब्दनमुखसे कहो तुम११७
हाय प्रकृति विरुद्ध तुम्हारे, गर्भधारण करो दुख अपारे ।
रहते पुरुष सदैव स्वतंत्रा,तुमको निधिने करी परतंत्रा ।।११८
दूजे प्राणी को उदर में बसाओ,उसका भार तुम्हीं खुद उठाओ ।
खिचती सारी नसें दुःख भारी,सहना पड़ता तुम्हें सर्वनारी११९
नो महीनों के वाद प्रसूति, जो है दूजी कृतान्त की दूती ।
उस समय वेदना की कहानी, वस जानते केवल ज्ञानी ।।१२०
अन्त में जो पुनर्जन्म पाया, तो संतान को देख पाया ।
माता का हृदय भी कहां है,विस्मृति सारे दुखों की जहां है१२१
प्रेमपूर्वक खिलाया पिलाया, उरसे चिपका के उसको सुलाया।
सारे संकटसहे उसकेकारण,किन्तु उसका किया प्रेमपालन१२२
किन्तु उस प्रेमका मूल्य हि क्या है ? तुच्छतम उसके रे !
तुल्य क्या है ?
कुछ भी अधिकार अब न रहा है.
जिसके कारण कि दुखड़ा सहा है ।।१२३।।
मेरे हाथों से उसको है छीना,मेरी कुछ भी यों पीड़ा लखीना ।
ऐसे दुःखोंकी पुतलीहै नारी,हाय विधनाने क्यों कर संवारी१२४

दूर देशों को पुत्री तू जावे, जाने फिर लौटकर कब तू आवे।
तुझको फिर देखभी मैं सकूंगी, अथवा योंही विरहमें मरूंगी१२५

॥ दोहा ॥

यों माता ने अति किया, करूणापूर्ण विलाप ।
जाने अब कब होगया, माता सुता मिलाप ॥१२६॥
गंधर्वदत्ता भी खड़ी, छोड़े अश्रूधार ,
जननी जन्मवसुंधरा, का छूटेगा प्यार ॥१२७॥
गला गले में डाल कर सखियां करे विलाप ।
हे आली ! अब कौन दिन होगा पुनर्मिलाप ॥१२८॥

× × ×

जब गरुडवेगने यों सबको, करते विलाप रोते देखा ।
बोले गंभीर वचन तब यों, किसने देखी है विधि रेखा ॥१२९॥
संयोग वियोग सदा यों ही, दुनिया में होते रहते हैं ।
विधि के समुद्र में जीव लगाते, यों ही रहते गोते हैं ॥१३०॥
फिर सोचो तो अपने मनसें, क्या पुत्री घरमें रहती है ?
परतंत्र नारिका जीवन है, संपूर्ण सृष्टि यह कहती है ॥१३१।
पुत्री का उज्ज्वल हो भविष्य, अभिलाषा यह रक्खो मनमें ।
ऐसी शिक्षायें दो इसको, यह सफल बने निज जीवनमें ॥१३२
माता व पिता पुत्री के कारण, जितने सकट सहते हैं ।
हित भाव सुता के सुनो सदा, उनमें अन्तर्हित रहते हैं ॥१३३॥

तिस पर गंधर्वदत्ता तो है, पूरी प्रवीण सब बातों में ।
किस भांति पटक दूं उसे कहो,मैं हीनपुण्यके पादों में ।।१३४

गज के बहु मूल्य कलेवर पर, बहुमूल्य झूल शोभा पाती ।
अति स्वच्छ स्वर्णकी मुद्रामें ही,मणिकणिका रक्खी जाती१३५

सहृदय पुरुष के कंठों में, शोभा पाती है सरस्वती ।
दानी के घरमें जाकर ही, लक्ष्मी कहलाती यशस्वती ।।१३६

है समवसरण लक्ष्मी केवल, अर्हन्तों के पद की दासी ।
अति घोर तपस्वी को ही होती, प्राप्त ज्योति केवल खासी१३७

फिर मैं क्यों गंधर्वदत्ता के, शुभ जीवन को बरबाद करूं ।
कैसे अयोग्यको सौंप, आप ही निज अपयशको याद करूं १३८

है भाग्य इसीका निर्णायक, वह अपना निर्णय कर लेगा ।
करवा सहृदय इसके वह ही,स्वयोग्य कुंवर को वर लेगा।१३९

इसकी प्रसन्नता में समझो, सबकी प्रसन्नता है अपनी ।
आशीष सभी यह दो इसको यह रहे सदा प्रमुदित वदनी ।१४०

यों खगपतिने सबको समझाकर, धीर बंधाई जनता को ।
पुत्री को हित उपदेश दिया, निज हृदय दबाई ममता को ।१४१

गंधर्वदत्ताने पूज्यवर्ग के, चरण छुए विह्वल मनसे ।
उन चरणों का प्रक्षाल किया, निज नेत्रों के अश्रूजल से ।।१४२

सखियों को हृदय लगा करके, उनका अंचल कीना गीला ।
हे सखियों ! आज हमारा है, संबंध हुआ समझो ढीला ।।१४३

बोली अतीव दुःखित स्वर से, गंधर्वदत्ति का जाती है ।
हे जननि जन्म भूमि! तुमको, यह अंतिम शीश झुकाती है।१४४
ऐसे कह कर बैठी विमान में, कुछ सखियों को संग लिये ।
श्रेष्ठी भी खगपति से अब तक, थे सब बातोंसे निपट लिये१४५
यह पुत्री मेरी पुत्री है, कुछ भी न आप चिंता करना ।
आरंभ करूंगा जाते ही, उद्योग स्वयंबर का करना ।।१४६
अति शीघ्र आपके दर्शन फिर, मैं अपने घर पर पाऊंगा ।
कुछ भी नवीनता होगी तो, मैं यहां खबर भिजवाऊंगा।१४७
यों कह खगपति को श्रेष्ठी ने, पूरा संतोष दिया मनको ।
बोला अब देर नहीं कीजे, आज्ञा दीजे सत्वर हमको ।।१४८।।
तब खगपति ने ले बहु सेवक, धनमाल खजाना साथ लिया ।
रत्नाभूषण वस्त्रादि सभी, पुत्री को सारा साज दिया ।।१४९
फिर बैठ सभी विमानों में, उड़ चले पवन पथ में सत्वर ।
खेचरगण भी कर बिदा सुता को, पहुंचे अपने अपने घर।१५०

।। दोहा ।।

विधि विधान अति विविध हैं, क्यों कर जाने जांय ।
खेचरलक्ष्मी आप ही, भूमिचरों में आय ।।१५१।।

× × ×

श्रीदत्त पहुंचे राजपुर, गंधर्वदत्ता को लिये ।
अतिशय विभव संयुक्त होकर, निज भवन में जब गये ।१५२
अति मुदित सेठानी हुई, पति को विभव युत देखकर ।
पर शीघ्र शंकित होगई, खेचर सुता को देखकर ।।१५३।।

यह कौन है अति सुन्दरी लाये कहां से हैं इसे ?
हा! पुरुष के छल कपट की मालुम पड़े कैसे किसे? ।।१५४।।

इस भांति इसके भाव को, तत्काल श्रेष्ठी ने लखे ।
सब वृत्त इसको कह दिये, कुछ भी छिपाकर नहिं रखे।१५५

फिर प्राप्त करके राज आज्ञा, विधि स्वयंबर की रची ।
खेचर सुता के रूप की थी, धूम दश दिशि में मची ।।१५६।

अति चतुर कारीगरवुलाये, भव्य मंडप के लिये ।
जैसी सुता थी सुन्दरी, मंडप बने वैसा हि ये ।।१५७।।

अतिशय मनोहर द्वार तोरण, युक्त केतु समेत है ।
माणिक्य मंडित नाकनगरी, को तर्जना देत है ।।१५८।।

भीतर सभा मंडप बनाया, क्षेत्र रम्य विशाल में ।
वस रम्यता उस तुल्य दिखती, है नहीं इस काल में ।।१५६

मणि मोतियों से दिप रहा, आंगन जहां का था भला ।
यह ज्ञात होता स्वर्ग का टुकड़ा, यहां आया चला ।।१६०।।

थी सभा मंडप मध्य में, इक रत्न की चौकी बनी ।
ज्यों लक्ष्मी के भाल में, सौभाग्य विन्दु सुहावनी ।।१६१।।

चौगिर्द चौकी के वहां, रमणीक सिंहासन लगे ।
जो स्वर्ण मुक्ता मणि प्रभृति की, ज्योति से अति जगमगे।१६२

वहु झाड़ औ फानूस, मंडप में लगे सुन्दर महा ।
चातुर्य खग शिल्पी गणों का, कुछ नहीं जाता कहा ।।१६३

धरणीन्द्र का यह था भवन, अथवा सुरेश्वर की सभा ।
भू खण्ड के सारे विभव की, थी यही अथवा प्रभा ॥१६४॥

दर्पण जड़े मणि भित्ति में, प्रति बिम्ब सारा पड़ रहा ।
संसार ही सारा यथा है, आज मणि से जड़ रहा ॥१६५॥

कितनी कहें शोभा नहीं, इसकी जरा जाती कही ।
होकर चमत्कृत चित्तसे, प्रतिभा सभी जाती रही ॥१६६॥

की घोषणा वैश्येशने, सब देश में इस बात की ।
आओ सभी गुणधीश खगपति-सुता-मुख-शशि-चातकी ।१६७

वीणा बजा खगपति सुता को, जो विजित कर पायेंगे ।
वे ही सुता के योग्य वर, बड़ भाग्य समझे जायेंगे ॥१६८।

सुन सूचना यह देश भर में, घोर हलचल मच गई ।
सब के हृदय में कामना की, सृष्टि अद्भुत रच गई ॥१६९

वीणा बजैयों की उंगलियां, तड़पने भारी लगी ।
सोई हुई वीणावधूगण, आज थीं इक दम जगी ॥१७०॥

ले संग वीणायें बजैये—लोग अब चलने लगे ।
जो थे विमुख वीणा कलासे, हाथ कर मलने लगे ॥१७१॥

खेचर सुता की ख्याति थी, अति दूर दूर प्रदेश में ।
गुणवान् सब आने लगे, उस देश से इस देश में ।।१७२॥

वैश्येशने सबके लिए, उत्तम प्रबंध किया यहां ।
सुन्दर भवन सब खुल गए, पुरमें अनेक जहां तहां ॥१७३॥

जमने लगी अब भीड़, नगरी में विदेशी वृन्द की ।
बजनें लगी सर्वत्र, वीणायें मधुर आनन्द की ।।१७४।।

आया नहीं जब तक दिवस, निश्चित स्वयंवर का अहा ।
उद्वेग सागर सर्वका तब तक, उछल करता रहा ।।१७५।।

जब आगया निश्चित दिवस, तब तो न कहने की रही ।
धोखा यही था रे ! किसीका हृदय फट जावे नहीं ।।१७६।

पहुंचे सभी मंडप भवन में, जा सिंहासन पै डटे ।
बस देख मंडप की छटा को, रह गये लोचन फटे ।।१७७।।

सौरभ्य युक्त समीर ने, जब मस्त उनको कर दिया ।
तब जा कहीं उन्माद ने था, बन्द नेत्रों को किया ।।१७८।।

पर शीघ्र ही अलि का, मधुररव कान में ज्योंही पड़ा ।
भ्रम हुआ वीणानाद का, उन्माद तब तत्क्षण उड़ा ।।१७९।

पर थी कहां वीणा वहां अलि कानमें था गा रहा ।
पहचानते स्वर भी नहीं फिर मूढ़ क्यों आये यहां ।।१६*।।

हा हा प्रवंचित हो पुनः, बैठे संभल कर शीघ्र ही ।
घट धूम्र नासा में घुसी, तत्क्षण अवस्था फिर वही ।।१८१।।

अबके मगर उस धूमने, वेहोश ऐसा कर दिया ।
तन्द्रा सती ने शीघ्र ही पट, चित्र आगे धर दिया ।।१८२।।

देखा अलौकिक सुन्दरी, गंधर्वदत्ता आगयी ।
मेरे गले में माल डाली, हो गया मैं ही जयी ।।१८३।।

कर खोल कर छाती लगाने, के लिये ज्योंही उठा ।
वादित्र ध्वनि से चौंक, आसन युत धरा पर जा लुठा ।।१८४
उमड़ा हंसी का स्रोत, धिक् धिक् कर रहा मिरदंग था ।
मन्मथ ग्रहावेष्टित युवक, इस भांति कोई तंग था ।।१८५।।
अब नृत्य गणिका का हुआ, प्रारंभ महफिल लग गई ।
सोई हुई संज्ञा पुनः सबकी, अचानक जग गई ।।१८६।।
पर कुछ न अच्छा लग रहा था, बेकली थी बढ़ रही ।
था तन यहां, पर आंख सबकी, द्वार पर थी गड़ रही ।।१८७।।
आती अगर दासी कोई, सब चौंक पड़ते एक दम ।
आकुल सभी थे होरहे, बस अब रखा जाता न गम ।।१८८।।

।। दोहा ।।

यों मंडप में तड़फते, बैठे राजकुमार ।
गंधर्वदत्ता आरही, अब सखियों की लार ।।१८९।।

× × ×

जब द्वारमें निज चरण युग, गंधर्वदत्ता ने धरे ।
सबके लगे लोचन उधर, आश्चर्य तृष्णा से भरे ।।१९०।।
खगदेश के भूषण अमोलक, रत्न मणियों के बने ।
पहिने हुए पट भी अनूपम, चन्द्रिकावत् चमकने ।।१९१।।
अति मन्द मन्द मराल गति से, चरण धर आगे बढ़ी ।
आहा अनूपम मूर्ति यह, किस चतुर शिल्पी ने गढ़ी ।।१९२।।
लाना पड़ा होगा नभाँगण से उसे शशि को यहां ।
तब उदधिगत शशिको लगाया देवताओंने वहां ।।१९३।।

ये नागबालायें हरी होंगी, लटाओं के लिए ।
अति कुपित अब तक नाग,उनको ढूंढ़ते विषधर हुए ॥१६४॥
अति तीक्ष्ण नासा कीर वर से, मांग कर लाया सही ।
दूजी उसे विधिने दई, पर वह मृदुलता न रही ॥१६५॥
लाया कहीं से बिंबफल, होगा विचारा दौड़ कर ।
ये अधर जो इसके बनाये हैं, उसी को तोड़ कर ॥१६६॥
इतने कहां हीरे मिले होंगे, उसे बहुमूल्य ये ।
बत्तीस दशन बना दिये, सौंदर्य अन्य अतुल्य ये ॥१६७॥
यह शंख ऐसा कौनसे, दधि में मिला होगा उसे ।
अति मृदुल ग्रीवा स्थान पर, रक्खा चतुरने है जिसे ॥१६८॥
यह चन्द्रकांत मिला कहां, वक्षः स्थली के वासते ।
जो स्थान रखने को बनी, कुचकुंभ युग के वासते ॥१६६॥
कैसी चतुरता की अरे ! कटिभाग दिखता ही नहीं ।
क्या क्या किया होगा इसे, बस जानता होगा वही ॥२००॥
हां ठीक तो है स्तंभ कदली, गर्भ के कोमल महा ।
यह भार ऊपर का धरा, जाता कहो कैसे यहां ॥२०१॥
कैसी चतुरता से किया संबंध इनका भिन्न ही ।
ऊपर अधः को प्रगट कर, कटि को किया प्रच्छन्न ही ॥२०२॥
तूणीर के आधार पर, रक्खी गई कदली अहो ।
पर पद्म इनको किस तरह, धारण किये रहते कहो ॥२०३॥
इस भुजलता के वासते, सुम कौनसे गूंथे अरे ।
क्या कह सकें किस भांति, उसने कार्य हैं ऐसे करे ॥२०४॥

कितना समय उसको लगा, होगा बनाने में इसे ।
पर है समस्या अब मिलेगी, आज यह पुतली किसे ॥२०५॥
यों कल्पना जन कर रहे, खेचर सुता वीणा लिये ।
थी आगई उस रत्नचौकी, पर सुदृढ़ मनको किये ॥२०६॥
प्रतियोगिता होने लगी, क्रमशः गुणी आने लगे ।
आनंदनंदित तार वीणा के, मधुर गाने लगे ॥२०७॥
अब भ्रमर भूले शब्द अपना, झंकृतें उठने लगीं ।
सौंदर्यलहरी शब्द की थी, गगनमें लुठने लगी ॥२०८॥
आते हुए मस्तक उठाये, भूप दिखते थे सही ।
पर हो पराजित किस तरफ, कब लौटते दिखते नहीं ॥२०९॥
अति कोमलांगी का हृदय, इतना कठोर न जानते ।
आते अगर सकुशल पुनः, तो भाग्यशाली मानते ॥२१०॥
खेचरसुता का मुख 'शशी' था, वह न अब जाता कहा ।
नृपवृंद के मुखचन्द्र को जो, राहु सम था बन रहा ॥२११॥
क्षण एक कोई, दो क्षणों तक, अरु बढ़ा कुछ और क्षण ।
रां रूं बजा कर बेसुरो, पूरा न कर पाते थे प्रण ॥२१२॥

॥ दोहा ॥

ऐसे बहु नृप हो चुके, सभी पराजित पूर्ण ।
खगपुत्रीने कर दिये, सबके अभिमत चूर्ण ॥२१३॥

× × ×

अब तक जीवंधर बैठे थे, चुपचाप निरखते क्रीड़ा को ।
सिर उन्नत कर राजा जाते, ले आते किन्तु पीड़ा को ॥२१४

आयी बारी अब थी उनकी, इस अद्भूत रण में जाने की ।
चातुर्य कला कौशल अपना, सब कुछ झटपट दिखलाने को२१५
कर नमन हृदयसे श्रीप्रभुको,गुरुवरका सविनय स्मरणकिया ।
इस प्रथम विजय की आशामें,जीवंधरने अब गमन किया ।२१६
पहुंचे चौकी पर सत्वर वे, चौ नजर हुई खग-पुत्री से ।
वीणा के पहिले प्रेम राग थी, प्रगट हृदय की तंत्री से ।।२१७
दर्शन से ही खग पुत्री ने, वर लिया उन्हें मन ही मन में ।
आनंद अलौकिक प्रगट हुआ, तत्क्षण उसके सारे तनमें ।।२१८
पर काम लिया कुछ दृढ़ता से, बोली सकंप "वीणा लीजे ।
अपना चातुर्यकला कौशल,अब यहां कुमार! प्रगट कीजे" ।२१९
दस बीस धरी थी वीणाएं, जीवक ने अस्वीकार करी ।
बतलाकर दोष प्रगट उनमें, अच्छी वीणा की आश करी।२२०
खगपुत्री अतिशय मुदित हुई, लखकर इस वीण-परीक्षा को ।
सब दोष रहित अपनी वीणा,सौंपी शुभ नाम सुघोषाको ।२२१
खुद दूजी वीणा लेकर के, जीवंधर के सम्मुख आई ।
दिखलाने लगे अलौकिक दोनों, अपनी अपनी चतुराई ।।२२२
उस समय सभाका दृश्य अलौकिक, अहो देखते बनता था ।
वीणाझंकृतिको सभा भवन, बस मंत्रमुग्धसा सुनता था ।२२३
वनसे मृगशावक भग आये, बांबी से नाग निकल आये ।
पिकशावक भी माकंद छोड़, शिक्षा लेने को चल आये ।।२२४
गंधर्व जहां के तहां खड़े, कीलित से होकर सुनते थे ।
औ भ्रमर विचारे मन ही मन, न जाने क्यों गुन मनते थे ।२२५

थी अवश्य पराजित,किन्तु विजय वह अपनीपूर्ण समझती थी ।
आंखें उसकी बस बार बार,जीवकसे समुद उलझती थीं ।२२६
जीवक ने वीणा बंद करी,वाह वाह की ध्वनि सब ओर हुई ।
सब सभा प्रशंसा करती थी, इनकी आनंद विभोर हुई ।।२२७
फिर विजयमाल खगपुत्रीने, जीवंधर के उरमें डाली ।
बस प्रणयसुधासेआज भर गई,उसकी शुष्क हृदय प्याली ।२२८
तत्क्षण सखियोंके संग वहां से, उसने तो प्रस्थान किया ।
अब इधर लगी होनी बातें,हा! हा! भारी अपमान किया ।२२९

।। दोहा ।।

खड़ा हुआ होकर कुपित, तत्क्षण काष्ठांगार ।
बोला रे! नृप वृन्द हो ! कुछ तो करो विचार ।।२३०

× × ×

यह नमक मिर्च हलदी धनिया का,क्रय विक्रय करने वाला ।
कैसे कहिये वर सकता है, यह बनिया क्षत्रिय की बाला ।।२३१
हैं बड़े बड़े योद्धा क्षत्रिय, संग्राम विजय करने वाले ।
अफसोस कुमारी छोड़ इन्हें,वरमाल वणिक-उर में डाले ।२३२
श्रीदत्त अगर जीवंधर को ही, कन्या देना चाहता था ।
तो घरमें उसे बुला करके, वह इसको परणा सकता था ।२३३
किसलिये स्वयंबर रचवाया, सबको आने का कष्ट दिया ।
मेरी सम्मतिसे तो इसने, अपमान सभीका स्पष्ट किया ।।२३४
तिस पर जीवंधर को देखो, कन्या पर क्या जादू डाला ।
मोहित करके उसको अपने, उरमें डलवाली वरमाला ।।२३५

मैं इसको खूब जानता हूं, अभिमान इसे अति है मनमें।
लौटते देख सबको, भारी हंसता था कैसा लोचनमें ॥२३६
किस भांति अकड़कर गया वहां, कैसा पाखड मचाया था।
वीणायें अस्वीकार करी, मानो ब्रह्मा बन आया था ॥२३७
अब हृदय अगर कुछ है तुममें, उसमें कुछ चोट लगी होतो।
बतलादो इसको इसी समय, तलवारों से हे! नरपोतो ॥२३८
असि के होते वीणा जीते, यह नियम कहां का होता है।
धिक्कार उसे है अब भी जो,तलवार दबाये सोता है ॥२३९
इस तरह दुष्ट ने सर्व सभामें, आग लगा दी ईर्षा की।
फिर सुना सुना तीखे ताने, ऊपर से घृत की वर्षा की ।२४०
थे नीतिवन्त भी कई भूप, इनको उनने बहु समझाया।
पर उनका वह उपदेश, अग्निमें ईंधन बनकर ही आया ।२४१
इतने में गरुड़वेग आये, उनने बहुतेरी विनय करी।
पर पित्तज्वर वाले को भी क्या,अब तक कोई वस्तु जरी ।२४२
अब तक जीवंधर बैठे थे, पर रह न सके अब वे भी यों।
बोले खगपति से,व्यर्थ आप इतनी अनुनय करते हैं क्यों? ।२४३
अन्याय मार्ग में पांव धरा, धरने दो इनको आप जरा।
परखूंगा इनको एक एक, मैं युद्धभूमि में खड़ा खड़ा ॥२४४
नहीं आप जरा भी भय खावें, अपयश न आपका होने का।
आ गया रानियों का इनकी, अब समय बैठकर रोनेका ॥२४५
बस अब क्या था मिल गया,निमंत्रण,रणमें शीघ्र उतरनेका।
रणचंडी को अन्याय न्याय का, न्याय यथोचित करनेका ।२४६

कुछ इधर हुए कुछ उधर हुए, आ युद्ध भूमि में खड़े हुए।
वारण करने पर भी जीवक थे, सबके आगे अड़े हुए ।।२४७
देखा सबने जीवंधर को, जो वणिक्पुत्र कहलाता था।
वह आज बड़े से बड़े, महारथियों के मन दहलाता था।२४८
खगपति आश्चर्यचकित होकर, लखते थे जीवक के बलको।
कर रक्खा था उनने उनके, पीछेही निज सेना दलको।२४९
कुछ काल युद्ध घमसान हुआ, आखिर दुष्टों का ध्वंस हुआ।
इस विजयलक्ष्मीका विजयी, वरभी विजयाका अंश हुआ।२५०

॥ दोहा ॥

छिन्न भिन्न सेना हुई, युद्ध हुआ अब शांत।
अब पाठक सुनिये जरा, आगेका वृत्तान्त ।।२५१।।

× × ×

कन्या स्वयंवर होचुका, अब व्याह की तैयारियाँ।
होने लगी दोनों तरफ, फूली खुशी की क्यारियां ।।२५२।।
गंधर्वदत्ताको सजाने, नभचरी सखियां लगीं।
अपनी कला चातुर्य सब कुछ, आज दिखलाने लगीं ।।२५३
सौंदर्यसीमागत सुकन्या, का निसर्गज देह था।
आकल्प कल्पनका मगर, बस मांगलीक सनेह था ।।२५४।।
अथवा अनूपम रूपराशी, को नजर लग जाय ना।
इस हेतु भूषण वसन की, तन पर करी सब कल्पना ।।२५५
मस्तक संवारा और फिर, सीमन्त डाला बीच में।
सीमन्त सरिता फेनवत्, गूंथी सुमाला बीचमें ।।२५६।।

मणिचूर्ण से अद्भुत रचा, सौभाग्य तिलक ललाट पर।
रंगस्थली ज्यों काम की, हो, चन्द्रकान्त विराट पर ॥२५७।
खंजनदृगीके युगदृगोंमें, कृष्ण अंजन आंजिया।
चित्राम मकरी का युगल, सुन्दर कपोलों पर किया ॥२५८
ताटंक पहनाये मनोहर, कर्णमें इन्द्रोत्पली।
लगने लगी बस आननश्री, यों कुमारी की भली ॥२५९॥
कुच युग्म पर मृगमदमयी, स्मरकेतु के चित्राम थे।
मानो मदननिधि कुंभ युग पर, लिखित अधिपति नामथे।२६०
कर-चरणयुग मंडित किये, मेंहदी रचा कर मोहिनी।
सब भांति से सुकुमारिका, दिखने लगी अति सोहिनी ॥२६१
इस भांति जीवक भी वरोचित, वेष भूषा से सजे।
दिखने लगे अति ही मनोहर, देख मन्मथ भी लजे ॥२६२।
दोनों विराजे वेदिकामें, रति मनोज समाकृती।
सबसे प्रथम ही धारिणीने, उठ उतारी आरती ॥२६३॥
आये गृहस्थाचार्य फिर, श्री सिद्धयंत्र सम्हारिके।
करने लगे पूजा पुनः अति, शुद्ध मंत्र उचारिके ॥२६४॥
होमाग्नि को प्रज्ज्वलित कर, शुभ द्रव्य उसमें होमिये।
संपन्न सारे कार्य, कालोचित सुमंगलके किये ॥२६५॥
वादित्र रवध्वनि होरही, खगनारि मंगल गारही।
चारों तरफ आनंद की, गहरी छटा थी छारही ॥२६६॥
उस काल खगपति गरुडवेग, सुनीर पूरित घट लिए।
आनंद पूरित चित्तसे दीपक, समक्ष खड़े हुए ॥२६७॥

संकल्प कर सुकुमारिका का, कर गहाया कुंवर को ।
बांधा सुबंधन प्रेम का, औ धर्म का सब उमर को ।।२६८।।
करग्रहण करते ही कुंवर, प्रस्वेदपूरित होगये ।
आनंद अनुभव के लिये, युगनेत्र मीलित होगये ।।२६९।।
गंधर्वदत्ता भी प्रकंपित, होगई आनंद से ।
रोमांच तनमें उठ गये, होगये श्वास अमंद से ।।२७०।।
करके समाप्त क्रिया वहां से, महल में पहुंचे उभय ।
नैसर्गिकी लज्जा यवनिका, पड़ रही दोनों हृदय ।।२७१।।
अब कौन बोले प्रथम ही, यह थी समस्या सामने ।
विजयी उभय, फिर बोलकर कोई विजित कैसे बने ।।२७२
थे मूक दोनों प्रणय का, गूढानुभव थे कर रहे ।
पर व्यक्त करने को न जाने, किस लिये थे डर रहे ।।२७३
गंधर्वदत्ता सोचती थी, प्रथम बोलेंगे कुंवर ।
तत्काल बोलूंगी तभी में, प्रथम आज्ञा मान कर ।।२७४।।
जीवक इधर थे सोचते, वीणाविजयिनी के लिये ।
इसकी मधुर वाणी सुधा को, प्रथम श्रुतपुट से पिये ।।२७५

।। दोहा ।।

हृदय विकलता बढ़ रही. मुख पर धारे मौन ।
देखें अब इस समर में, होगा विजयी कौन ।।२७६।।

× × ×

शमादान का सित प्रकाश सर्वत्र व्याप्त था ।
लौ के ऊपर लगा हुआ, अति शुभ्र काच था ।।२७७।।

लौ का प्रेमी शलभ एक, आया मंडरा कर ।
किन्तु रह गया दीन काच ही से टकरा कर ॥२७८॥

बोले जीवक देख इसे हे शलभ! तुम्हारी ।
हुई अवस्था वही, आज जो हुई हमारी ॥२७९॥

तुम प्रेमी हो, पूर्ण प्रणय कर आये उड़ कर ।
किन्तु शिखा है निठुर, तुम्हें देती न कलेवर ॥२८०॥

काच आवरण लगा, हंस रही अपने अन्दर ।
रूपराशि दिख रही, किन्तु पाते न स्पर्श कर ॥२८१॥

अहो मित्रवर! यही दशा है प्रेमी जनकी ।
दुखी न हो निज मनमें, देखो मेरे मनकी ॥२८२॥

अब चुप नहिं रह सकी, अधिक बोली सुकुमारी ।
एक दशा है शिखे ! तुम्हारी और हमारी ॥२८३॥

स्नेहपूर्ण हो, लग्न वर्तिका से जलती हो ।
निज प्रेमी से नहीं, कभी छिप कर चलती हो ॥२८४

निज प्रेमी के हेतु, प्रकाशित रूप तुम्हारा ।
निज अंचल तुमने, प्रेमी पथ मध्य प्रसारा ॥२८५॥

फिर भी प्रेमी सदा, तुम्हारे दूषण गाते ।
दूर दूर ही मंडराते पर, पास न आते ॥२८६॥

आलि! न हो सन्तप्त रीति है यही भुवन की ।
अपनी ही क्या बात देख तू मेरे मन की ॥२८७॥

॥ दोहा ॥

अब जीवक नहिं रह सके, अधिक संयमी आप ।
ग्रीवामें सुकुमारी के, धरी बाहु चुपचाप ॥२८८॥
हुई प्रकम्पित खगसुता, हृदय बढ़ा उन्माद ।
मदन लुटेरा आ गया, बजा सिंह का नाद ॥२८९॥
डाकू ने उन्माद सब, लिया अंत में छीन ।
उभय पराजित होगये समर-संगर में दीन ॥२९०॥

इति श्री छन्दोबद्ध जीवधरचरित्र मेंगंधर्वदत्ता
लाभ नामका तृतीय लम्ब पूर्ण हुआ ॥३॥

चतुर्थ अध्याय

॥ दोहा ॥

परम शरममय धरम जो, करम भरम हरतार ।
कर कुडमल धर शीश पर, प्रणमूं बारंबार ॥१॥

× × ×

आया मास बसन्त संग ले माधुरी ।
प्रगटी छटा अनूप भुवनमें बिस्तरी ॥२॥
प्रकृति नारि ने पीत वस्त्र परित्याग कर ।
हरित शाटिका पहनी अति अनुराग कर ॥३॥
पिक शावक मधु गान समुद गाने लगे ।
गान श्रवण प्रिय मधुप वृंद आने लगे ॥४॥
बिछा पीत कालीन वृक्ष गण ने दिये ।
नृप वसन्त के सहृदय स्वागत के लिये ॥५॥
गया शीत संकोच हृदय पंकज खिले ।
मधु मन्मथ द्वय मित्र परस्पर आ मिले ॥६॥
वन उपवन सर सरिता नग अटवी सभी ।
दिखने लगे सृजित, हैं मानों ये अभी ॥७॥
खिली वाटिका में प्रसून की क्यारियां ।
नृप वसन्त की हैं मानो सुकुमारियां ॥८॥

तरुगण पर मंजरी मंजु प्रगटी अहा ।
अलि मंडल मदमत्त हुआ मंडरा रहा ॥९॥
जल क्रीड़ादिक करन लगे नर नारियां ।
अति उमंग से गान करें सुकुमारियां ॥१०॥
वनक्रीड़ा के हेतु लोक जाने लगे ।
दयिताओं के संग मोद पाने लगे ॥११॥
जीवंधर भी चले मित्र गण संग में ।
अति प्रसन्न मन रंगे प्रेम के रंग में ॥१२॥
छटा निरीक्षण उपवन की करने लगे ।
प्रकृति माधरी से मवको भरने लगे ॥१३॥
नर नारी गण के समूह अति सोहने ।
यत्र तत्र बैठे थे मुनि मनमोहने ॥१४॥
कई सुमन संचय करने में थे लगे ।
कई सलिलक्रीड़ा को जाते थे भगे ॥१५॥
यों वसन्त उत्सव की शोभा देखते ।
जाते थे जीवंधर गाते रेखते ॥१६॥
देखा आगे दृश्य एक करुणामयी ।
सत्वर ही मूर्छा सी मनको आगयी ॥१७॥
एक श्वान अति दीन रक्त रंजित हुआ ।
पड़ा हुआ था विकल शीश भंजित हुआ ॥१८॥
प्राण कण्ठगत हुए किन्तु कुछ श्वांस थी ।
मृत्यु भयंकर खड़ी हुई उस पास थी ॥१९॥

पूछा मालुम हुआ हव्य दूषित किया ।
याज्ञिक विप्रों ने इससे दंडित किया ॥२०॥
करुणासागर कुंवर अधिक नहिं रह सके ।
समय न समझा उचित उन्होंने बहस के ॥२१॥

॥ दोहा ॥

बैठ गये तत्क्षण कुंवर, मनमें दया विचार ।
तिर्यग दुःखसे श्वानका, करने को उद्धार ॥२२॥
श्वान श्रवण पर मुख लगा, पतितोद्धारक मन्त्र ।
सुना दिया दुःखसे उसे, करने हेतु स्वतंत्र ॥२३॥

× × ×

भवितव्यता कुछ थी भली, थी श्वान की गति सुधरनी ।
मरणोन्मुख भी श्वान को, उस मंत्र में श्रद्धा बनी ॥२४॥
आनन्द अति आने लगा, उस मंत्रवर के श्रवणमें ।
सब शक्तियां उसने लगाई, मंत्रवर के मननमें ॥२५॥
कुमरेश भी आनंदनंदित, हो अधिक उत्साह से ।
हरबार दुहराने लगे, उस मंत्र को अति चाह से ॥२६॥
उपकार पाकर श्वान तो, आनन्द से था भर रहा ।
उपकार करके कुंवर का मन, भी प्रमुद से भर रहा ॥२७॥
सच्चे हृदयसे श्वान का, शुभ हो यही थी भावना ।
अति मोदसे उस श्वानके, श्रुत पर लगा था आनना ॥२८॥
हर बार कंपित पुच्छ को, करता अमित आनंद से ।
मंत्रामृती का पान करता, था कुंवर मुखचन्द से ॥२९॥

लवलीन थे बस मंत्र देने में, कुंवर तो इस तरह ।
कुछ देर में देखा तमाशा, एक अति आश्चर्य सह ॥३०॥
अति रम्य रूप विशाल तन, सुंदर वचन अज्ञात जन ।
आकर उपस्थित होगया, अज्ञात पथसे गुणसदन ॥३१॥
कुमरेश को कुक्कुर करण से, कर पकड़ संबोध कर ।
कहने लगा गत प्रश्न कुक्कुर, कर्णसे उठिये कुंवर ॥३२॥
मस्तक उठाकर कुंवर ने, देखा चकित अतिशय हुए ।
पूछा पुनः अज्ञात जनसे, प्रश्न यों विस्मय लिए ॥३३॥
हैं आप कौन पधारते किस स्थान से श्रीमान् जी ।
किस हेतु हैं दर्शन दियें, हमको यहां धीमान् जी ? ॥३४॥
लज्जित तथा स्मित युक्त हो, उत्तर नवागत ने दिया ।
कुमरेश सुनिये आपने तो, प्रश्न ही अद्‌भुत किया ॥३५॥
जिस श्वान की श्रुति पर लगाये, वक्त्र आप विराजते ।
जिसके लिए सुख साधना के, साधनों को साधते ॥३६॥
माहात्म्यमय यह मूल मंत्र, जिसको अभी तक दे रहे ।
पशुयोनि दधि से नाव जिसकी, हो खिवैया खे रहे ॥३७॥
हूं मैं वही जिसको समझते, आप एक ललाम हैं ।
इस श्वानवर का चरणयुगमें, बार बार प्रणाम है ॥३८॥
पूरी हुई है आपकी हित-साधना की भावना ।
फलरूप मैं यक्षेश अतिशय, विभव अधिकारी बना ॥३९॥

दोहा

जब कुमार ने यों सुना, यक्षेश्वर वृत्तान्त ।

यत्न सफल निज जानके, हुए प्रसन्न नितान्त ॥४०॥
यक्षेश्वरने कुंवर की, कर पूजा बहु रूप ।
भेंट किये मन मुदित हो, दिव्याभरण अनूप ॥४१॥
अरु बोला स्वामिन्! मुझे, कभी कीजिये याद ।
तभी उपस्थित होऊंगा, तज कर सकल प्रमाद ॥४२॥
यों कह कर यक्षेश तो, लौट गया निज स्थान ।
जीवंधर भी चल दिये, करते सुकृताख्यान ॥४३॥

× × ×

देखते अठखेलियां जनवृंद की,कुतर जाते थे चले प्रिय सगमें ।
होरहीथी आजसर्व वनस्थली,मधु समागमसे अलौकिकरंगमें ४४
इस समय दो नारियां सुंदरवपु,ज्ञात होतीथीं किसीकी दासियां।
जावहींपहुंची मुदितहो प्रेमसे,जहं कुवरथे कररहेउल्लासियां४५
कर प्रणाम खड़ी हुई वे चेटियां,चूर्णके दो पात्र आगे धर दिये ।
लख कुंवर बोले कहो किस हेतु तुम, भ्रम रही हो चूर्ण अपने
कर लिये ॥४६॥
एक चेटीने विनयपूर्वक तभी,वृत्त अपना यों कहा सुकुमार से ।
इस नगर में सेठ दो हैं रह रहे,मित्र,दत्त-कुबेर साहूकार से ।४७
श्रेष्ठियों के हैं सुक्रमशः दो सुता,नाम गुणमाला तथा सुरमंजरी।
ये उभय सुकुमारियां सखियां सुनो, हैं चतुर अति गुणभरी औ
सुंदरी ॥४८॥
आज दोनों ही इसी उद्यानमें, हैं पधारी वसन्तोत्सव देखने ।
साथमें लाईं सुगंधित चूर्ण हैं,जोकि उनके हाथहीसे हैं बने॥४९

शर्त दोनोंमें हुईहै चूर्ण पर,श्रेष्ठतर जिसका प्रमाणित चूर्णहो ।
विजयिनी होगी वही बस आज तो, दूसरी आली पराजय पूर्ण हो ॥५०॥
जो पराजितहो उसीको दंड यह,बिन नहाये लौटना होगा उसे ।
बस उन्हींकी चेटियांहम चूर्णले,पूछती फिरतीहैंविज्ञ समाजसे५१
आपही बतलाइये अब जांचकर,इन उभयमें कौनसाहै श्रेष्ठतर।
तब कुंवर ने ध्यान से देखा उन्हें, शीघ्र ही बोले उभय को जांचकर ॥५२॥
चूर्ण गुणमाला बनाती श्रेष्ठहै,आज स्पर्धामें उसकीहै विजय ।
और यों सुरमंजरी भी है चतुर, किन्तु नहिं पहिचानती है वह समय ॥५३॥
अनुचरी सुरमंजरीकी हो कुपित,तमक से बोली सभीहैं एक से ।
पक्ष बिन कोई नहीं दिखता यहां,चित्त सबकेपूर्ण रागद्वेषसे ५४
श्रेष्ठहैं गुणमालिका का चूर्णतो,किन्तु कोई हेतु कुछ देता नहीं ।
क्यों बुरा सुरमंजरी का चूर्ण है, गुण व अवगुण का कोई वेत्ता नहीं ॥५५॥
यदि प्रमाणितकर सको इसको कुंवर, तो इसे अब शीघ्र कर बतलाइये ।
अन्यथा कुछ आपको कीमत नहीं, बस चले उठ आप घरको जाइये ॥५६॥

॥ दोहा ॥

जीवंधर तब हंस पड़े, सकल कलापरिपूर्ण ।

फैंके दोनों हाथ से, नभ में दोनों चूर्ण ॥५७॥
गुणमाला के चूर्ण पर, उड़ आये अलिवृन्द ।
सुरमंजरि का चूर्ण अब, स्वतः होगया मन्द ॥५८॥

× × ×

अनुचरी सुरमंजरी की होगई, परम लज्जित शीघ्र गई वहां ।
कररही सोत्कंठ प्रतीक्षणा, उभय सखियां मौन धर बैठी जहां५९
देख गुणमाला स्वचेटीको मुदित, होगई प्रमुदित विजय निज मान के ।
उठ चली सुरमंजरी संकेत ले, निज पराजय चेटि मुख से जानके ॥६०॥
घोर ईर्षानल हृदयमें जल उठा, पा पराभवका पवन सुरमंजरी।
अतिकुपितहोकरचली उद्वेगसे, बिननहायेही वहांसे वहनिरी६१
कोपभाजन किन्तु जीवकही हुए, थे पराभवके प्रदातातो वही ।
की प्रतिज्ञा हो कुपित निज चित्त में, मैं कभी नर जाति को देखूं नहीं ॥६२॥
आज जिननेदी पराजयहै मुझे, बस उन्हें बदला चुकानेके लिए ।
व्याह उनहीसे करूंगी शेष सब, नर मुझेदिखते जलानेके लिए६३

॥ दोहा ॥

इतना कह सुरमंजरी, पहुंची निज आवास ।
कन्यागृहमें जा घुसी, रखे न मानव पास ॥६४॥

× × ×

सब दास हटाये महलों से, दासियां नियत करवी उसने ।

पहरेदारों की जगह सभी, सुंदरियों से भरदी उसने ।।६५।
नर चित्र निकाल दिवालों से, पत्थर पर फोड़ दिये सबको।
थे धरे खिलौनों के मानव, उनको भी तोड़ दिये सबको ।।६६
पुल्लिग नाम जिन चीजों के, थे उन्हें स्त्रीत्व में बदल दिये।
लोटा लुटिया पखा पंखी, और महल अटारी नाम दिये ।।६७
मनमें कोपानलकी ज्वाला, थी नर समाज पर धधक रही।
भीतर ही भीतर भयकारी, ईर्षाकी भट्टी भभक रही ।।६८।
गुणमाला सबकी प्यारी है, सुरमंजरि जहर उगलती है।
नर जाति संभलजा अबभी तू, मंजरिकी छाती जलतीहै ।।६९

॥ दोहा ॥

यों करती सुरमञ्जरी, नर समाज पर क्रोध।
ईर्षानिल में जल रही, हा हा अज्ञ अबोध ।।७०।।
अब पाठक सुनिये जरा, वनस्थली का हाल।
बैठी चिंता में जहां, उन्मन हो गुणमाल ।।७१।।

× × × ×

बहुत विनय कर लिया किन्तु मंजरि नहिं मानी।
चली गई हो कुपित दुखित वन से अस्नानी ।।७२।।
सखि वियोग से हुई दुखित गुणमाला मन में।
बैठी चेटी युक्त उसी चिंता की धुनमें ।।७३।।
और बन्धु बान्धव बैठे थे वहीं पास ही।
सब थे उत्सव मग्न किन्तु यह थी उदास ही ।।७४।।

इतने में ही मचा घोर कोलाहल वनमें ।
भगते थे नर नारि चीखते व्याकुल मनमें ।।७५।।
पट्टगंध गजराज भूप का हो उन्मादी ।
करने लगा प्रचंड हुआ बनमें बरबादी ।।७६।।
अंकुश आज्ञा तोड़ महावत सिर से डाला ।
रुद्रीभूत दौड़े वनमें ज्यों हो यम काला ।।७७।।
तोड़े पादपवृन्द लतायें कुंज मरोड़े ।
फोड़े वनगृह धाय फिरें सब मानव दौड़े ।।७८।।
आया आया दशों दिशामें शोर मचाया ।
गुणमाला ने भी देखा वह आया, आया ।।७९।।
दौड़ी हो भयभीत बन्धु सब दौड़े उसके ।
अपने अपने प्राण बचाकर सब ही खिसके ।।८०।।
गुणमाला के पीछे गजने पांव बढ़ाया ।
कौन करे प्रतिरोध काल था किसका आया ।।८१।।
सब बांधव उड़ गये जिधर भी रस्ता पाया ।
हाय किसी ने भी न दुःखमें हाथ बटाया ।।८२।।
गजको आया देख हुई गुणमाला व्याकुल ।
हाय हाय कर गिरी रही नहीं सुधबुध बिलकुल ।।८३।।
एक धायने किया किन्तु अतिसाहस तत्क्षण ।
गुणमाला के आगे होगई खड़ी विचक्षण ।।८४।।
पहले मुझको मार बादमें इसको हनना ।
आज सत्य धात्रित्वाभूषण मुझे पहनना ।।८५।।

॥ दोहा ॥

इसी समय वह देखिये, जीवंधर सुकुमार ।
कदम बढ़ाये आरहे, इसी ओर अविकार ॥८६॥
देख विपदमें बालिका-धात्री साहस युक्त ।
जीवक गजसे भिड़ पड़े, करने इनको मुक्त ॥८७॥

× × × × ×

उस भीमवपु शुण्डाल से, जीवक गये बस जूझ ।
थे धन्य उनके पैंतरे, थी धन्य उनकी सूझ ॥८८॥
शिर पर कभी चढ़ते, कभी वे खींचते थे सुंड ।
मुष्टि प्रहार कपाल करते, झनक उठता मुंड ॥८९॥
कर दौड़ बांये दाहिने, चक्कर लगाते खूब ।
कंटकित विषमा धरामें, वे घुमाते खूब ॥९०॥
कबही पकड़ कर दांत दोनों, झूमते सुकुमार ।
फिर पकड़ पुच्छ उसे घुमाते, करत चरण प्रहार ॥९१
था धन्य साहस धन्य शक्ति, सु धन्य हृदय उदार ।
दर्शक कभी चीत्कार करते, औ कभी जयकार ॥९२॥
यों कर अपूर्व कला-प्रदर्शन, किया गजमद चूर ।
चिंघाड़ करता चीखता, गजराज भागा दूर ॥९३॥
सबने खुशी की सांस ली, आये सभी में प्राण ।
जयकार जीवक का हुआ, सबका किया था त्राण ॥९४
होकर सचेत कुमारि भी, थी देखती सब दृश्य ।
बोली अनेकों बार जीवक, धन्य धन्य प्रशस्य ॥९५॥

इस बीचमें थी होगई आंखें उभय की चार।
औदार्य औ सौंदर्य में, उपजा परस्पर प्यार ॥९६॥
पर थे प्रगट में मौन, मनमें उठ रहा आल्हाद।
सौभाग्य आशीर्वाद था, या था विजय सु प्रसाद ॥९७
कुछ देर में सब शांत, कोलाहल हुआ भय दूर।
पर थे चढ़े सबकी जबां पर, आज जीवक शूर ॥९८॥
सब लोग लौटे नगर को, करते अनेक विचार।
आये कुंवर भी मित्र मंडल, सहित हृदय उदार ॥९९
परिवार युत धात्री सहित, गुणदाम भी निज धाम।
आई हृदय पट पर लिये, सुकुमार का चित्राम ॥१००
यह चाहती थी भूलना, पर कठिन था यह काम।
दुगुना स्मरण होता उसे, सुकुमारका सुख धाम ॥१०१
यह डाटती फटकारती, मनको अनेक प्रकार।
रे चित्त! तेरा पर पुरुष पर, बोल क्या अधिकार ।१०२
अपने कुमारी भाव का भी, था उसे सब ज्ञान।
अविवेकिनी भी वह नहीं थी, ज्ञात थी कुलकान ॥१०३
पर पक्ष शंका भी उसे थी, विदित था परिवाद।
अज्ञात उसको थी कहां, शुभ शील की मर्याद ॥१०४॥
पर क्या करे सबसे अधिक था, चित्त का उन्माद।
और उसको प्रबल करती थी, कुंवर की याद ॥१०५
कैसे प्रगट मनकी दशा, उन पर करूं मैं हाय।
चिंता यही दिनरात उसको चितातुल्य जलाय ॥१०६

॥ दोहा ॥

आखिर मनमें आगई, एक युक्ति अब याद ।
पहुंच जायगी क्षेमसे, अब दिलकी फर्याद ॥१०७॥
क्रीड़ा शुक अपना चतुर, उससे लूं अब काम ।
यही प्रणय संदेश मम, पहुंचाये उन धाम ॥१०८॥

× × × ×

निज प्रणय व्यथा लिखकर सारी,शुक गलमें पत्र प्रबंध किया ।
समझा कर सब बातें ऊपरसे,उसे शीघ्रही उड़ा दिया ॥१०९
पहुंचा शुक उड़कर शीघ्र,जहां थे जीवंधर बैठे छत पर ।
संध्या रंजित नभकी शोभाको,निरख रहे थे जी भरकर ।११०
उनकी आंखोंके आगे जाकर, बैठ गया वह कीर चतुर ।
लख पत्र सहित शुकको जीवंधर हुए जानने को आतुर ॥१११
जब हाथ बढ़ाया जीवकने, आगया स्वय ही शुक करमें ।
मीठी मीठी बातों से उसने, उत्कंठा भर दी उरमें ॥११२
बोला–कुमार! तुमने हाथी से, प्राण बचाये थे जिसके ।
अब हाय निर्दयीवत् बनकर, क्यों प्राण खेंचते हो उसके ।११३
उस दिनसे लेकर आज तलक़, वह सदा तुम्हीं को रटती है ।
न जाने कितनी मुश्किल से,उसकी ये रातें कटती हैं ॥११४॥
तुम किये उपेक्षा बैठे हो, कुछ खबर न उसकी लेते हो ।
उसकी नैया को छोड़ भंवरमें, अपनी अपनी खेते हो ॥११५
बोले जीवंधर हंस करके, हे शुक! तुम बड़े सयाने हो ।
अपनी स्वामिनिके चतुर दूत, पर कसते झूठे ताने हो ॥११६

मैंने जब उसे बचाया था, तो उसे भूल कैसे जाता ।
पर बिना पता जाने बूझे कैसे संदेशा पहुंचाता ।।११७
अब जाकर अपनी स्वामिनिसे,कहदेना यह शुभ कीरोत्तर ।
जैसी तुम स्नेही प्रतिमा हो,वैसा ही स्नेही जीवंधर ।।११८।।
यों कह जीवंधरने तोतेसे, पत्र लिया औ पढ़ डाला ।
तत्काल प्रेम से उत्तर भी,बैठे बैठे ही लिख डाला ।।११९।।
गुणमाला मुदित हुई अतिशय,उत्तर पाकर जीवंधरका ।
अब ज्ञात हुआ यह सखियोंको,भी भेद हृदयके अंदरका ।।१२०
उनके मुखसे पितु माताको भी,ज्ञात हुआ यह भेद सकल ।
तब बड़े प्रसन्न हुए सुनकर,समझे कन्याका भाग्य प्रबल ।।१२१
गंधोत्कटसे की विनय प्रेमसे, उसने भी उसको मानी ।
संकोच कभी करते न उचित,संबंध मिलाने में ज्ञानी ।।१२२।।

।। दोहा ।।

शुभ मुहूर्त में होगया, पाणिग्रहण संस्कार ।
धनद मित्रने छोड़दी, जीवक को जलधार ।।१२३।।

इति श्री छन्दोवद्ध जीवंधरचरित्र में गुणमाला
लाभ नामका चतुर्थ लम्ब पूर्ण हुआ ।४।।

पंचम अध्याय

जबकि जीवककी दृढ़ मारसे,व्यथित व्याकुल राज करी हुआ।
बढ़ गई इतनी तन वेदना,तज दिये सब पान अहार भी ॥१॥
अनुचरादिक ने इस बातकी,खबरदी नृप काष्ठ हुताश को।
प्रथमही वह था अति रोषमें,अनलमें घृतका अब पूर था ॥२॥
नगर गोधन व्याध समूहसे, नृप चमू उपरांत छुड़ा लिया।
खगसुता परणी विजयी हुआ,स्मरणथे नृपको सबवृत्तये ॥३॥
वश नहीं तबतो कुछभी चला,वह खुला रण क्षेत्र विशालथा।
अब न किन्तु कुमार सचेतहै,नहिं सहायकहैं नृप और भी ॥४॥
समयथा यहही प्रतिशोधका, गज प्रहारण के अपराध का।
प्रगट राज्य निदेश किया तभी,बस उपस्थित जीवकको करो ।५
सुदृढ आयस बंधन बांधके,सुन चमू चलदी गृह श्रेष्ठि के।
वितत घेर लिया गृह श्रेष्ठिका,कुपित जीवक देख हुए महा ॥६
चल दिये तब जीवक कोपसे,समरके धर वस्त्र शरीर पै।
चढ़ रही भृकुटी सुकुमारकी,इस अवांछित कोप निमित्तसे ॥७
पर तभी पितु ने कर थामके,नृपतिसे नहिं युद्ध कभी भला ।
प्रगट कायर किंकर यों तभी, कर दिये कर बद्ध कुमार के ॥८
जहर का वह घूंट कुमारने,गिट लिया कुछ सोच विचार के।
नहिं उलंघ्य निदेश सुतातका,अथ च भाग्य परीक्षणके लिए ।९

पकड़ सैनिक ले पहुंचे उन्हें,नृप समक्ष वड़े अभिमान से ।
नहि जरा प्रगटी नृपके दया,अहह प्रत्युत हर्षित होगया ॥१०॥
विवश देख स्वतः सुकुमारको,नृपतिकी अव हिंसकता जगी ।
बस निदेश दिया उसने तभी,विगत प्राण इसे अवही करो ॥११
जव सुना इस नीच निदेशको,मचगया कुहराम समाज में ।
सुहृद् मंडलमें सुकुमारके,अतिभयंकरता तव छागई ॥१२॥
मरण मारणको सव होगये,परम उद्यत शस्त्र निकालके ।
पर कुमार निशंकित हो तभी,वरजने सवको रणसे लगे ॥१३॥
अयि सखा समुदाय! अशांत्त क्यों,मम परीक्षणहै यह भाग्यका ।
मरण भी समझो यदि आगया,भय कहो इसमें किस वातका१४

॥ दोहा ॥

भाग्य परीक्षण मित्रगण, होने दो मम आज ।
शांत हृदय से वैठिये, परिजन स्वजन समाज ॥१५॥

× × ×

यों समझाकर जीवंधरने,वधिकों के संग प्रयाण किया ।
शूली पर जातेही मनमें, यक्षेश्वरका कुछ ध्यान किया ॥१६॥
वह यक्ष भक्तिसे भरा हुआ,आया तत्क्षण दौड़ा दौड़ा ।
मानों कुमारको लेजाने, आया हो महा दिव्य घोड़ा ॥१७॥
सव भेद अवधिसे जान लिया,एक रूप वैक्रियिक खड़ाकिया ।
उसको शूलीका रूप दिखा,जीवक को तत्क्षण उड़ा दिया ॥१८
लोगोंने देखा जीवंधर,शूली पै चढ गतप्राण हुए ।
मच गया बड़ा कुहराम,अनेकों मूर्छित होकर म्लान हुए ॥१९

हा हा अन्यायी यह तूने, कैसा अनर्थ है कर डाला ।
अब नहीं देखने योग्य रहा, तेरा यह पापी मुख काला ।।२०।
पहले तैंने छल छद्म रचाकर,सत्यंधरको मरवाया ।
फिर देख स्वयंवर सका नहीं,तब घोर युद्ध था करवाया ।।२१
अब पुण्यवान परउपकारी,जीवक को शूली दे डाली ।
हा हा,पापी क्या तूने है, समवर्तीसे छुट्टी पाली ।।२२।।
संसृतिमें कहां मिलेगा,अब हा, जीवंधर सा उपकारी ।
गोधन छुड़वाया व्याधों से, गजका संकट काटा भारी ।।२३
वह राजपुरी का गौरव था,दुखियों का एक सहारा था ।
श्रेष्ठीकुल का भूषण था, जन आंखों का वह ताराथा ।।२४
हा हा समवर्ती तुमको भी,कुछ करुणा मनमें नहिं आई ।
अपराधीको नहिं दंड दिया,सज्जन पर दया न दिखलाई ।।२५

।। दोहा ।।

नगरी के सब लोग यों, करते सोच विचार ।
अपने अपने घर गये, विलखत वदन अपार ।।२६।।

× × ×

जीवंधरको लेकर यक्षेश्वर,पहुंचा चंद्रोदय गिरि पर ।
अपने उपकारी को लाकर, कृतकृत्य बनाया अपना घर ।।२७
अति भक्ति सहित देवियों सहित,जीवंधरका अभिषेक किया ।
वस्त्राभूषण कर भेंट दिव्य,चरणोदक अपने शीश लिया ।।२८
वह दिव्य शक्तियोंका धारी, यक्षेश्वरजो कुछ कर सकता ।
करताथा सब कुछ किंतु कभी,क्या मन उसकाथा भरसकता२९

अमृतमय भोजन लेकरके,देवियां खिलाने आती थीं ।
कोई सप्रेम पुरसती थी,कोई बीजना डुलाती थी ॥३०॥
झारी जलकी लाती कोई,कोई ताम्बूल खिलाती थी ।
नहलाती थी पहनाती थी,औ कोई सेज बिछातीथी ॥३१॥
वे दिव्य नृत्य गंधर्व गीत, किन्नरियों की मिठी तानें ।
आनंद धरामें देवोपम,सुकुमार भोगते मनमाने ॥३२॥
आज्ञा में कई देव सेवक, प्रति समय खड़े ही रहते थे ।
तत्क्षण इच्छा पूरित करते, जो कुछ वे मुखसे कहतेथे ॥३३॥
इस भांति बहुत सा समय गया,जीवंधरका आनन्दों में ।
बंध गये यक्षके भक्ति भाव,औ असितप्रेमके फंदोंमें ॥३४॥
पर कहो मनस्वी मानवको, कब बैठे रहना भाता है ?
पर पिंडों पर आनंद करें, यह उनको कहां सुहाता है ॥३५
आखिर मन ऊब उठा जीवकका,इन सब दिव्यानन्दों से ।
बोले यक्षेश्वरसे अबतो, छोड़िये प्रेमके फन्दों से ॥३६॥
इस भांति कहो कब तक बैठूंगा,निरुद्योग उत्साह रहित ।
है पता कालका नहीं जरा,औ भार कार्यका पड़ा अमित ॥३७
अतएव मुझे आज्ञा दीजे,कर्तव्य मार्गमें पांव धरूं ।
आगे का जीवन तय करना, कार्यक्रम उसका नियत करूं ॥३८
यक्षेश्वरने तब प्रेम सहित,जीवंधर को आज्ञा दे दी ।
वस्त्राभूषण अति दिव्य दिये,औ संग तीन विद्यायें दी ॥३९॥
जलतारणकी विषवारणकी,जगमोहन गायन गाने की ।
अनुनयकी, संकट पड़ने पर,कर करुणा पुनः बुलानेकी ॥४०

श्रौ कहा आपका राज्य शीघ्रही,करमें आने वाला है ।
करणी फल काष्ठांगार शीघ्रही निश्चित पाने वाला है ।।४१
जगजीवनमेंकर प्राप्त विजय,आध्यात्मिक विजयप्राप्त होगी ।
हे चर्मशरीरी! गतियोंकी गति-आगति सब समाप्त होगी ।।४२

।। दोहा ।।

बिदा किया यक्षेशने, जीवक को सप्रेम ।
जीवंधर भी चल दिये, आगे को सक्षेम ।।४३।।
एकाकी करने लगे, जगती बीच बिहार ।
शांत चित्त निर्भयमना, निर्मल चरित उदार ।।४४।।
नगर विपिन सर सिंधु नद, गिरि उपवन वन खड ।
एकाकी विहरत चले, जीवक वीर प्रचण्ड ।।४५।।
भ्रमते जग सब निरखते, अनुभव करते वीर ।
आये जीवक एक दिन महा विपन के तीर ।।४६।।

× × × ×

अति भीम भयानक विपिन विशाल सुविस्तृत ।
पशु पक्षी अगणित रहते जिसमें आश्रित ।।४७।।
शुंडाल यूथ के यूथ विचरते जिसमें ।
विकराल व्याघ्रगण निर्भय फिरते जिसमें ।।४८।।
मृगवृंद चौकड़ी भरते कहीं उछलते ।
अरणे भैंसे गवयादिक कहीं निकलते ।।४६।।
वे जाम्बुवान वाराह विटपि संचारी ।
विकराल व्याल फिरते मस्तक मणिधारी ।।५०।।

इस भांति महा कानन का दृश्य भयंकर ।
निर्भीक निरखते जाते थे जीवंधर ॥५१॥
पर अहो अचानक प्रगट हुआ दावानल ।
भीषण चीत्कार मचा बनमें कोलाहल ॥५२॥
भीषण ज्वाला की लपटें लगीं निकलने ।
मानो पृथ्वी ही पावक लगी उगलने ॥५३॥
कर तड़तड़ाट तरुवृंद लगे सब जलने ।
पा तीक्षण ताप लगे शिलखड पिघलने ॥५४॥
गजगण का मद सब उतर गया घबड़ाये ।
भगते थे केशरिवृंद पुच्छ दुबकाये ॥५५॥
भूले सब बैर विरोध परस्पर मनका ।
भगते थे पाने सभी किनारा वनका ॥५६॥
वांबी के विषधर वेबस लगे झुलसने ।
तरुगण जल जल पृथ्वी पर लगे पसरने ॥५७॥
झुलसे सब पक्षी बाल नोड़ के भीतर ।
मर गईं जननियां मुग्ध उन्हीं में जलकर ॥५८॥
पावक प्रचण्ड यह कांड देख जीवंधर ।
हो गये प्रकम्पित मनमें भीति दयाधर ॥५९॥
हा हा बिन मौत हजारों प्राणी मरते ।
भगरहे हजारों भयसे चीत्कृत करते ॥६०॥
इनका इस दुःखसे कैसे त्राण करूं अब ।
दावामल करके शांत अशांति हरूं अब ॥६१॥

॥ दोहा ॥

यह विचार कुसुमाग्रने, धारा कायोत्सर्ग ।
वन्य प्राणियों का शमन, करन अनल उपसर्ग ॥६२॥

× × ×

एकाग्र चित्त करके कुमारने,परमेष्ठी का ध्यान किया ।
करुणा करके अपने मनमें,करुणाकरका आह्वान किया ॥६३
पुण्यात्माओंकी आत्मशक्ति,जब अपना बल दिखलाती है ।
कर महा असंभवको पलमें,संभवित सकल दिखलातीहै ॥६४
पुण्यात्माकी लघुसी पुकारसे,इन्द्र स्वर्ग तज चल आता ।
अपना विश्रामावास त्याग,पृथ्वीसे शेष निकल आता ॥६५
पर्वत चुटकीसे उड़ जाते रूई आयसवत् बन जाती ।
हालाहल अमृत बन जाता,विषधरकी माला बन जाती ॥६६
जब पा प्रसंग पुण्यात्माका,कुक्कुर यक्षेश्वर पद पावे ।
विस्मय क्याहै तब नभ मंडलसे,मूसलधार बरस जावे ॥६७॥
आये नभमें घन घटा घोर, गर्जन तर्जन करते भारी ।
विद्युत्का खड्ग लिये करमें,ज्वाला पृतना विनाशकारी ॥६८
घहराकर भर भर बरस पड़े,तत्काल अवस्था बदल गई ।
उठती थी जहां ज्वाल लपटें,पानी की नदियां निकल गई ॥६९
तत्क्षण दावानल शांत हुआ,आई समीर संतोषभरी ।
जागृत हो उठी चेतनायें,जो पड़ी हुई थीं जली भरी ॥७०॥
छा गया शांति साम्राज्य विपिनमें,पशु पक्षी सब शांत हुए ।
यह देख अवस्था जीवंधरभी, मनमें मुदित नितान्त हुए ॥७१

॥ दोहा ॥

दावानल का होगया, इस प्रकार जब अंत ॥
जीवंधर आगे चले विधि विपाक चिन्तन्त ॥७२॥

× × ×

अब तीर्थस्थानों को चले,जीवक मुदित होते हुए ।
की वंदना अति भक्तिसे,निज पापमल धोते हुए ॥७३॥
तीर्थंकरों की पंच कल्याणक, स्थली वंदन करी ।
फिर वंद अतिशय क्षेत्र,अतिशय पुण्य की पुटली भरी ॥७४॥
देखे अनेक प्रसिद्धपुर, नदियां, गिरि उत्ताल हैं ।
विद्वान् बहु धनवान् अति, बलवान् पृथ्वीपाल हैं ॥७५॥
यों निरखते शोभा धरा की, जा रहे जीवक चले ।
क्रमशः गमन करते हुए, वे राष्ट्र पल्लव में रले ॥७६॥
विख्यात चन्द्राभा पुरी थी, राजधानी देश की ।
मानो धरा पर आगई, अलकापुरी अमरेश की ॥७७॥
देखा अनेकों लोग दौड़े, जारहे चिन्तित हुए ।
यों देख घबड़ाये इन्हें, जीवक अमित विस्मित हुए ॥७८॥
कुछ लोग आये दौड़ इनको, देख इनके पास भी ।
होता कुंवरको,लख इन्हें, आश्चर्य भी उपहास भी ॥७९॥
पूछा कुंवर ने तब उन्हें यों आप क्यों घबड़ा रहे ?
क्या दुःखहै जिससे नगरके, लोग सब अकुला रहे ॥८०॥
उत्तर मिला कुसुमार! सुनिये, चित्तसे चिंता कथा ।
जो आज नगरीमें बनीहै, सार्वभौमिक सी व्यथा ॥८१॥

धनपति यहां भूपाल है, जो न्याय के अवतार हैं ।
तिल तिल परम उत्तम जिन्हें,सुतिलोत्तमा पटनार है ॥८२॥

है पद्मसी सुकुमार उनके, नंदिनी पद्मा परा ।
जो रूप गुण कौशल कला, लावण्य की क्षिति उर्वरा ॥८३॥

थी आज वह उद्यान में, पुष्पावचय करने गई ।
पर जान पड़ता आज वह, बिन मौत ही मरने गई ॥८४॥

काली लटायें देख मुख पर, झूमती आनन्द से ।
ईर्ष्यालु विषधरने डसी, सकुमारि विषमय दंष्ट्र से ॥८५॥

तत्काल मूर्च्छित होगई, तन वर्ण काला हो गया ।
जगता हुआ सौन्दर्य उसका, आज मानों सोगया ॥८६॥

लाई गई वह महल में, उपचार सब हैं हो रहे ।
बैठे अनेकों हैं चिकित्सक, शक्ति अपनी खोरहे ॥८७॥

मणि मंत्र औषधि औ रसायन, व्यर्थ होते जारहे ।
माता पिता भाई प्रजाजन, अश्रुधार बहा रहे ॥८८॥

हे मान्यवर! क्या जानते हैं, आप विषमोचन कला ।
चलिये अगर हैं जानते तो, कीजिये सबका भला ॥८९॥

बोले कुमार विचार कर, मैं जानता कुछ कुछ कला ।
बस शीघ्र जन समुदाय, उनको नृप भवन को ले चला ॥९०

था पुण्य इनका प्रगट तन पर, भव्यता थी छारही ।
यह भव्यता ही तो प्रगट पटुता, सकल बतला रही ॥९१॥

॥ दोहा ॥

राज भवन में जब कुंवर, पहुंचे सबके संग ।
मानों रति के सदन में, पहुंचा स्वयं अनंग ॥९२॥

मूर्छित पद्मा देखकर, जीवक हुए प्रसन्न ।
बैठ गये आसन जमा, पद्मा के आसन्न ॥९३॥

अनिमिष दृष्टि निहारते, बैठ रहे कुछ काल ।
रूप राशि का पान कर, मानो हुए निहाल ॥९४॥

यक्ष दत्त विषमोचनी, विद्या का धर ध्यान ।
अब जीवक करने लगे उसको जीवन दान ॥९५॥

सोई सी वह जग उठी, कन्या कंचन गात्र ।
किन्तु चकित विस्मित हुई, जीवक दर्शन मात्र ॥९६॥

उमड़ पड़ा नृपसदन में, सुख का पारावार ।
धनपति और तिलोत्तमा, हुए प्रसन्न अपार ॥९७॥

देखा जब सुकुमार को, ओज कान्ति गुणखान ।
निश्चय राजकुमार है, लिया हृदय में ठान ॥९८॥

पुण्यवान् छिपते नहीं, कैसा ही हो भेष ।
पंक मग्न मणि का कभी, मूल्य घटा लवलेश ? ॥९९

इस उपकारी ने दिया, इसको जीवन दान ।
इसके जीवन को पुनः, करदें इसे प्रदान ॥१००॥

दम्पति ने यों सोच कर, उत्तम योग विचार ।

करने का निश्चय किया, हलका कुछ कुछ भार ।।१०१

सादर भूपति ने किया, अपना प्रगट विचार ।

जीवक ने भी कर लिया, प्रमुदित हो स्वीकार ।।१०२

शुभ मुहूर्त में कर दिया, अति उमंग से ब्याह ।

पद्मा जीवंधर हुए, मनमें मुदित अथाह ।।१०३।।

इति श्री छन्दांबद्ध जीवंधर चरित्र में पद्मा लाभ
नाम का पाँचवाँ लम्ब पूर्ण हुआ ।।५।।

छठा अध्याय

॥ दोहा ॥

पद्मासे परिणयन कर, रहने लगे कुमार ।
पुण्योदयसे आ मिले, सब साधन सुखकार ॥१॥
भूल गये कुछ कालको, अपना भविष विचार ।
पद्माके उर पद्ममें, भ्रमर बने सुकुमार ॥२॥

× × ×

सोयेथे जब एक रातमें पद्मायुत जीवंधर ।
गंधर्वदत्ता औ गुणमाला की स्मृति हुई प्रियंकर ॥३॥
उचट गई सब नींद, हृदय में अमित वेदना छाई ।
हा हा मैं आनंद भोगता, वे होंगी अकुलाई ॥४॥
पुर्नमिलन के कार्यक्रममें, अब क्यों ढील करूं मैं ।
क्यों नहिं निज भविष्य कार्यक्रम, सत्वर नियत करूं मैं ॥५॥
यों विचार कर जीवंधर, चुपके से उठे पलंग से ।
सोती पद्मा छोड़ चले वे, तत्क्षण नव्य उमंग से ॥६॥
अर्ध निशा का समय, जगत में सन्नाटा था छाया ।
छोड़ महल को जीवधरने, पथमें पांव वढ़ाया ॥७॥
प्रातः काल जगी पद्मा, तव दिखे नहीं जीवंधर ।
दुःखी हुई अति ही सुकुमारी, उमड़ा शोक जलाकर ॥८॥

धनपति ने तब सभी दिशामें, भेजे पटुतर अनुचर ।
वन उपवन औ पुर बहु ढूंढे, पर न मिले जीवंधर ॥९॥
हार थाक कर पद्माने, तब वृषमें चित्त लगाया ।
कर्मविपाक कुटिल है, अपने मनको यों समझाया ॥१०॥
जीवंधर भी चले इधरको, तीर्थवंदना करते ।
वन उपवन पुर पत्तन अतिशय, देख देख जी भरते ॥११॥
भ्रमते भ्रमते पहुंचे जीवक, तापसियों के वनमें ।
देख कठिन अज्ञान तपस्या, कांपे जीवक मनमें ॥१२॥
कोई तरुतनसे तन घर्षे, कोई शिल शिर धारे ।
कोई सरिता मध्य खड़े हैं, कोई खड़े किनारे ॥१३॥
किनहीके तन शूल चुभे हैं, किनही के तन भाले ।
कोई ऊठक बैठक करता, कोई दण्ड निकाले ॥१४॥
कोई वलकल के पट धारे, औ कोई मृग छाला ।
कोई अंग भभूत रमाये, किये सर्व तन काला ॥१५॥
कोई पंचानल बिच बैठे, कोई तरु पर झूले ।
हाय हाय अज्ञान तपस्या से, निज हित प्रतिकूले ॥१६॥
देख इन्हें जीवंधर बोले, अरे तपस्वी लोगों !
क्यों यह व्यर्थ तपस्या करके, कष्ट शरीरी भोगो ॥१७॥
सत्य मार्ग श्रद्धान बिना, सब कायक्लेश वृथा है ।
अधिकाधिक बंधते हो, खुलने की यहां कौन कथा है ॥१८॥
प्रथम करो श्रद्धान ज्ञान, फिर सम्यक् चारित धारो ।
पुनः विवेक पूर्ण तप करके, कल्मष कर्म पखारो ॥१९॥

यह नर जन्म मिला है दुर्लभ, व्यर्थ न इसे गमाओ।
सदुपयोग करके तुम अपनी, मेहनत सफल बनाओ ॥२०॥
यों उपदेश दिया स्वामी ने, सत्यमार्ग दिखलाया।
किन्तु निकट भव था जिनका, बस,उन्हें समझ में आया ॥२१

॥ दोहा ॥

अब जीवंधरने किया, आगे को प्रस्थान।
क्रम क्रम कर पहुँचे जहां, क्षेमपुरी उद्यान ॥२२॥

× × ×

नंदनवनसा उद्यान महा, षट् ऋतु की शोभा का धारी।
थे वृक्ष फलों से लदे हुए औ, पुष्पमयी क्यारी क्यारी ॥२३॥
गमले फूलों से लदे हुए, क्यारियां दूब की कटी हुई।
पाटल की कली कली देखो, सुरभित पराग से पटी हुई ॥२४
फव्वारे सुंदर छूट रहे थे, कमल वापिका में फूले।
नर नारि निचयवत् भ्रमरयूथ भ्रमते गाते फूले फूले ॥२५॥
पिक वनिता गीत सुनाती थी, औ अलिगण गुंजन करते थे।
दर्शकगण औ श्रोताओं का,बस मन वे रंजन करते थे ॥२६॥
नंदन वनसे इस उपवन के, था मध्य जिनालय खड़ा हुआ।
श्रीसिद्धकूट था नाम, स्वर्गका टुकड़ा मानों पड़ा हुआ ॥२७॥
थे शिखर गगन चुम्बी जिसके उतंग सुदर्शन गिरिवर से।
दक्षिण उत्तर जाते रवि शशि, उससे टकराने के डर से ॥२८
थे स्वर्ण कलश चूलिका तुल्य, औ ध्वजा पवन से लहराती।
मानों जिनशासन के झंडे को, स्वर्ग लोक में फहराती ॥२९॥

था मुक्तिद्वार सम द्वार, तोरणादिक से सज्जित अतिसुंदर ।
पर था मुद्रित जिससे, प्रविष्ट कोई नहिं हो सकता अंदर ॥३०
संतोषित औ विस्मित होकर, जीवक प्रदक्षिणा देने लगे ।
परवश व्याकुल होकर केवल, बस नाम प्रभूका लेने लगे ॥३१
जय कर्मकुलाचलके चूरक, जय भवसमुद्रके तटगामी ।
जयमुक्तिवधूके कंथ नाथ! जय जय जय जय त्रिभुवनस्वामी! ३२
जय ज्ञान अनन्त प्रकाशक! हे जय,जय अनंत दर्शन धारी ।
जय बल अखंड सुख पूर्ण प्रभो! जय वीतराग जय अविकारी ३३
भव भीत भव्य जन,अभिभावक! हितमार्ग विधाता धर्मधनी ।
अशरण्यशरण सुखसेतु प्रभो! सुर नरमुनि नायक शिरोमणि ३४
आपके नाम की कुंजी से, जब मुक्ति महल के द्वार खुलें ।
फिर क्या विस्मय है जिनागार का, द्वार हे करुणाधार! खुले ३५

॥ दोहा ॥

इस प्रकार स्तुति कर चुके, जीवधर सुकुमार ।
तत्क्षण विघटित होगया, जिनागार का द्वार ॥३६॥

एक पुरुष तत्काल आ, खड़ा हुआ करबद्ध ।
बोला अतिशय प्रेम युत, सुनिये हे गुणवृद्ध ॥३७॥

क्षेमपुरी नगरी महा, नरपति देव नृपाल ।
न्यायनीतिमें निपुण है, वे अति हृदय विशाल ॥३८॥
राज्यश्रेष्ठि है वैश्यपति, लक्ष्मीनाथ सुभद्र ।
निर्वृति सेठानी महा, मैं सुभृत्य गुणभद्र ॥३९॥

अडिल्ल

उन दोनों के सुता क्षेमश्री नाम है ।
रूप सुगुण युत विधिकी सृष्टि ललाम है ।।४०।।
ज्योतिषियों ने लिखा कुण्डली में यही ।
इसका पति गुणगेह पुरुष होगा वही ।।४१।।
जिसकी आगति पाय सु परम विशाल यह ।
सिद्धकूट का द्वार खुले तत्काल यह ।।४२।।

।। दोहा ।।

उस अवसर की कर रहा, मैं कुमार! प्रतिपाल ।
आज आगमन आपका, हुआ सु प्रातःकाल ।।४३।।
सफल परिश्रम होगया, चिंता हुई विलीन ।
अब श्रेष्ठी होंगे मुदित, जल पाकर ज्यों मीन ।।४४।।
इतना कह कर चल दिया, वह श्रेष्ठी के गेह ।
इधर कुंवर आगे बढ़े, दर्शन को धर स्नेह ।।४५।।

× × ×

अतिशय प्रमुदित होकर जीवक, करते जयकार प्रविष्ट हुए ।
दर्शन कर लोचन सफल किये, अतिशय मनमें संतुष्ट हुए ।।४६
फिर गद्गद् भक्तिपूर्ण होकर, विनति प्रभु की प्रारंभ करी ।
हे नाथ! आपके दर्शन से, यह जीवन नौका तरी तरी ।।४७।।

मैं भूल गया सब भव बाधा, नरकों के दुख की याद नहीं ।
तिर्यंच गतीके दुःखोंका भी, मन में जरा विषाद नहीं ।।४८।।

इस भवमें जो जो विपद सही, उनका भी यहां विराम हुआ ।
दर्शनकी सुधा मिली जब से, सब रोगों का आराम हुआ ।।४६

अब परम शांति पाई मैंने, जैसे मणि मिले भिखारी को ।
रोगी संजीवन पावे ज्यों, मिष्ठान बुभुक्षाधारी को ।।५०।।

सब आज अमंगल दूर हुए, जीवनमें सुखमय स्रोत बहा ।
मनका मयूर यह प्रमुदित होकर, नाच रहाहै अहा अहा ।।५१।

जीवनका फल मैंने पाया, बाकी न रहा कुछ भी करना ।
सबछूट गया गिरना पड़ना, डरना तन धरना औ मरना ।।५२

दर्शन की गहरी गंगामें, जबसे मैंने है स्नान किया ।
आत्मासे कर्म कालिमाका, प्रभुवर मैंने अवसान किया ।।५३।।

अशरण मैं अबतक भ्रमताथा, अब सच्चा शरण प्राप्त किया ।
अब हूं सनाथ मैं सर्वसुखी, दुःखोंका सर्व समास किया ।।५४।।

॥ दोहा ॥

यों विनती जब कर रहे, जीवंधर सुकुमार ।
वैश्यनाथ भी आगया, करता जय जय कार ।।५५।।

पहले प्रभु को नमन कर, विनती करी धर प्रेम ।
पुनः परस्पर उभय ने, पूछा कुशल रु क्षेम ।।५६।।

सुमधुर वार्तालाप कर, हुआ सुभद्र प्रसन्न ।
जीवक वपु सह लख लिये, गुण कलादि प्रच्छन्न ।।५७।।

अपने मनकी बात सब, कही सेठने स्पष्ट ।
सुन जीवंधर भी हुए, मनमें अति संतुष्ट ॥५८॥
सेठ कुंवर को ले गये, अपने घर सानन्द ।
शुभ मुहूर्त में कर दिया, क्षेमश्री करबंध ॥५९॥

इति श्री छन्दाबद्ध जीवंधर चरित्र में क्षेमश्री
लाभ छठा लम्ब पूर्ण हुआ ॥६॥

सप्तम अध्याय

॥ छन्द भुजंगप्रयात ॥

अथ प्रेमसे क्षेम लक्ष्मीके संग, बिताया समय ज्यों रती औ अनंग ।
हुआ चित उद्विग्नतापूर्ण जब ही, लगी लग्न आगे को चलने की तब ही ॥१॥
तजी क्षैम लक्ष्मी उसी भांति सोती, उठी वह बिचारी सुबह रोती रोती ।
किये सेठने खोजने के प्रयास, मिले किन्तु स्वामी नहीं आस पास ॥२॥
थके हार बैठेहुए मन उदास, किया क्षेम लक्ष्मीने एकान्तवास ।
इधर जा रहे काननों में कुमार, किया चित में एक निर्मल विचार ॥३॥

॥ दोहा ॥

वस्त्राभूषण ब्याह के, थे अब तक भी साथ ।
उन्हें सौंप देना किसी, शिष्ट पात्र के हाथ ॥४॥

× × ×

मुझको तो इनकी चाह नहीं, मैं तो स्वच्छन्द विहारी हूं ।
फिर मैंने नहीं कमाये हैं, अत एव नहीं अधिकारी हूँ ॥५॥

ये मेरे पथ के बाधक हैं, चोरों का मन ललचायेंगे ।
चिन्ता उत्पन्न करेंगे औ, अड़चन अनेक पहुंचायेंगे ।।६।।
अतएव जिसे आवश्यकता हो, सचमुच इनके लेने की ।
बस है यह वस्तु उसी की ही, औ है उसही को देनेकी ।।७।
रोगी को औषध गुणकारी, नीरोगीके किस काम की है ।
है वसन नग्न के खातिर,ही रोटी भूखे के नाम की है ।।८।।
पर मिले पात्र ऐसा कोई, जो हो गरीब औ भद्रात्मा ।
हो विनयवान कर्तव्य निष्ठ, आलस्य रहित औ धर्मात्मा ।।६
ऐसा विचार करते करते, जीवंधर चलते जाते थे ।
अपनी धुनमें परिचित स्थानों से दूर निकलते जातेथे ।।१०।।
इतने में देखा एक पुरुष, उनही की ओर चला आता ।
हैदंड हाथमें, कंबल तन, कंधे पर हल लटका आता ।।११।।
कटि तटमें दात्र पिरोये है, ऊंची सी धोती फटी हुई ।
सूखा शरीर रूखा भोजन, आंखेंथीं दैन्य से पटी हुई ।।१२।
अति प्रेम सहित जीवंधर उससे,बोले मित्र ! कुशल तो है ?
तेरे कार्योंमें सिद्धि और,,तेरे घरमें मंगल तो है ? ।।१३।।
सुनकर वह कृषक प्रसन्न हुआ, औ गद्गद् वाणी से बोला ।
हे आर्य! आपके दर्शन से, निज द्वार कुशलताने खोला ।।१४
बोले तव जीवंधर भाई! है कहां कुशलता इस पन में ।
षट् कर्म स्वार्थ आशा चिंताही,घुले हुए हैं जीवन में ।।१५।।
रोटी उत्पादन की चितामें, कहां कुशलता है अपनी ।
इस हेतु अनीति करते हैं, न जाने कब कितनी कितनी ।।१६

मायाकी मोहक माया में, अपना स्वरूप सब भूल रहे ।
प्रतिकूल हुए सच्चे पथसे, अपने हितको उन्मूल रहे ।।१७
मिथ्यात्व पंक में मग्न हुए, सम्यक्त्व स्वच्छता दूर भगी ।
आत्मीयवृत्तियां नष्ट हुईं, परता, जड़ता में बुद्धि लगी ।।१८
श्रद्धा निजत्व की भी न रही, तब और बात बतलायें क्या ।
आंखों वाले अंधेको अब हम, वस्तुरूप दिखलायें क्या ।।१९
आत्माका तत्व, ज्ञान है वह भी, श्रद्धा बिना विकारी है ।
विपरीत मार्ग बतलाता है वह, स्वयं कुपथ संचारी है ।।२०
अब कहो हमारे चरित बनेंगे, कैसे सच्चे हितकारी ।
चारित्र बिना वह स्थान मिलेगा, कैसे हमें कुशलकारी ।।२१
यह निश्चय विकट व्यवस्था है,व्यवहार हमें सब दिखताहै ।
अपनी करणी का ही तो फल,यह जीव हमारा चखता है ।।२२
अत एव मित्र यदि सुख चाहो,व्यवहार प्रथम संशुद्ध करो ।
हिंसादिक पाप रुषादि, कषायों को पहले अवरुद्ध करो ।।२३
मन धैर्य धरो संतोष करो,अन्याय कार्यसे भय खाओ ।
यदि पड़े कष्ट तो कष्ट सहो,विचलित होकर मत घबड़ाओ २४
यह स्मरण रखो पापों का बलहै,पुण्य शक्तिसे अधिक नहीं ।
भोजन औ दस्त्र परिश्रमसे, होंगे सब प्राप्त कहीं न कही ।।२५

।। दोहा ।।

इस प्रकार सुकुमारने, दिया धर्म उपदेश ।
भूल गया वह कृषक तो, अपने सारे क्लेश ।।२६।।

× × ×

अति विनय सहित चरणों में पड़ा और बोला हे परोपकारी ।

मेरा जीतव्य कृतार्थ किया, हे धन्य नरोत्तम सुखकारी ।।२७
मेरी आंखें अब खुलीं मिला,अब सच्चा सुखद प्रकाश मुझे ।
मिल जायेगा आत्माका हित,करने का भी अवकाश मुझे ।२८

।। दोहा ।।

तब जीवंधर ने दिये, भूषण वसन उतार ।
और उसे देने लगे, अतिशय हृदय उदार ।।२९।।
बोला कृषक महाकृते ! यह क्या करते आप ।
क्यों देते मुझको प्रभो ! यह उत्पादक पाप ।।३०।।

× × × ×

मैं अब तक धन, धन करता था,धनही के पीछे भगता था ।
धनके कारण अपराध महा,गुरुतरभी करने लगताथा ।।३१
पर आज आपने सुझा दिया,यह धन निर्धन करने वाला ।
आत्माके उस सच्चे धनको,मोहित करके हरने वाला ।।३२
इस आत्मद्रव्यको छोड़,द्रव्यको लूं मैं अबकैसे स्वामिन् ।
विच्छू सम मुझको लगतेहैं,भूषण रुपये पैसे स्वामिन् ।।३३।।
सुनकर जीवंधर मुसकाये,बोले हे भव्य ! सुनो मेरी ।
बेशक लगता होगा तुमको,यह सोना पत्थरकी ढेरी ।।३४।।
पर है विशाल परिवार तुम्हारा,उसका पालन करना है ।
कैसेंभी करके मित्र! पेट,उसका तो तुमको भरना है ।।३५।।
यह द्रव्य तुम्हारी आत्म,साधनामें सहायता ही देगा ।
परिवार तुम्हारेका पालन,यह द्रव्य स्वयंही करलेगा ।।३६।।
अन्याय प्राप्त यह द्रव्य नहीं,संकोच मित्र ! क्यों करते हो ?

दोनोंका बोझा हलका करनेमें,फिर क्यों तुम डरतेहो ॥३७।
ऐसे उसको समझा,स्वामीने वस्त्राभूषण सौंप दिये ।
कर बिदा उसे खुद बिदा हुए,उसकी स्मृति मन लिए हुए ३८

॥ दोहा ॥

क्रमशः यों चलते हुए, जीवंधर सुकुमार ।
पहुंचे एक अरण्य में, लिये हुए श्रमभार ॥३९॥

× × × × ×

थे बड़े बड़े उत्ताल वृक्ष, अति गहरी जिनकी छाया थी ।
पिस्ते बादाम चिरोंजीकी,औ कहीं द्राक्षकी माया थी ॥४०
सर सरिता कूप वापिकायें, भी जहां तहां थीं बनी हुई ।
विश्राम हेतु अति स्वच्छ शिलायें,यहां वहांथी धरी हुईं ॥४१
देखा नमेरु तरु एक रम्य,उसके नीचे थी शिला धरी ।
बस बैठ गये स्वामी उसपर, थी भूमि सामने हरी भरी ॥४२
श्रमसे शरीर था थका हुआ, ठंडा समीर गहरी छाया ।
तत्काल नींद आ खड़ी हुई, औ फैलादी अपनी माया ॥४३।

॥ दोहा ॥

स्वामी सुखसे सोगये,उपल शिला पर शांत ।
आगे सुनिये विज्ञवर! यह विचित्र वृत्तान्त ॥४४॥

× × ×

जीवंधर थे जब सोये हुए,चेहरे पर पुण्य चमकता था ।
स्वाभाविक यौवनका प्रकाशभी,मुख पर द्विगुण दमकताथा ४५
फिर नैसर्गिक सौंदर्य नींदमें,उनका अद्भुत दिखलाता ।
है इन्द्रकि वा धरणीन्द्र अथ च,रतिकांत समझमें नहि आता४६

उन्नत मस्तक घुंघराले कच, चौड़ा ललाट ज्यों चन्द्रमणि ।
अति विनत चक्षु टेढी भौंहें, तीखी नासा प्रज्ञप्त गुणी ।।४७।।
काली मूछेंथीं बलवाली, थे होठ दिव्य बिंबाफलसे ।
थी शांतमूर्ति सौन्दर्यपूर्ण, अन्तर्निर्मलता के बलसे ।।४८।।
इस मुख छविको देखने लगी, आ निकट एक खेचरबाला ।
मुग्धाने निज जीवन निसार, उस छवि पर करही तो डाला ।४९
इतने में नींद जगी, स्वामी उठ बैठे इष्ट स्मरण करते ।
होगये चकित उस बालाको, सविकार देख ईक्षण करते ।।५०
सोचा कुलाङ्गनायेंतो ऐसा, कभी किया नहिं करती हैं ।
पर नरकी रूप सुधाको लालच, युक्त पिया नहिं करतीहैं ।।५१
अतएव स्वैरिणी दिखतीहै, अपने को उठ चलना चहिये ।
पर ज्वालामें कर मौढ्य, कभी अपनेको नहिं जलना चहिये ।५२

।। दोहा ।।

यों विचार चलने लगे, जीवंधर सुकुमार ।
देख इन्हें खगभामिनी, बोली वचन उदार ।।५३।।

× × × ×

हे नरपुंगव! मम कथा सुनो, मैं हूँ नृप खेचर की कन्या ।
संज्ञा अनंगतिलका मेरी, मैं पड़ी हुई हूँ अशरण्या ।।५४।।
विद्याधर एक मुझे हर कर, अपनी नगरी से ले आया ।
पर उसी समय उसके पीछे, लग गई प्रवर उसकी जाया ।५५
जब उसने देखा जाया को तो, मुझे यहां पर छोड़ गया ।
वह पापी तो अपने मनसे, मेरी किसमत को फोड़ गया ।।५६

पर जबसे दर्शन किये आपके, है सन्तुष्ट हृदय मेरा।
हे करुणालय! अपने मनमें,कुछ दीजे मुझ को भी डेरा ॥५७
जैसा सुन्दर तन दिखता है, वैसाही सुन्दर मन होगा।
हे नाथ! आपके इस मनमें,मेरा भी एक भवन होगा ॥५८॥
जीवंधर मनमें कहते थे, यह कैसी कुलटा नारी है।
सौन्दर्य ज्योति है तन परतो,मनमें लेकिन अंधियारी है ॥५९
जैसा तन इसका सुन्दर है, वैसा ही मन सुन्दर होता।
तो मेरा क्या प्रभु का निवास, भी इसके मन अन्दर होता ॥६०

॥ दोहा ॥

जीवंधर यों कर रहे, मनमें विमल विचार।
उधर खगसुता कर रही, निज वर्णन सविकार ॥६१
इतने में कुछ दूर से, आया शब्द गंभीर।
जिसमें थी अति वेदना, और भरी अति पीर ॥६२॥

× × ×

हा प्राणप्रिये! हा प्रेमनिधे! तुम कहां गई तुम कहां गई ?
हा सुमुखि! चन्द्रवदनी! सुविधे!तुम कहां गई तुम कहां गई ६३
इन प्राणोंको लेती न गई, निज साथ प्रिये! तुम कहां गई।
ये कष्ट पारहे घुल घुल कर,अति विकल हुए तुम कहां गई ।६४
इन शब्दों को सुनतेही, खचरी शीघ्र वहां से खिसक गई।
इतने में आया एक खचर, लेकर आंखें अंसुवाई हुई ॥६५॥
बोला हे भद्र! यहां पर मैं अपनी दयिता को छोड़ गया।
व्याकुल लख उसे पिपासासे,मैं पानी लाने दौड़ गया ॥६६॥

अब उसे देखता हूँ न यहां,मेरा मन पिघला जाता है ।
उस प्राणप्रिया के बिन देखे,यह प्राण भी निकला जाताहै ।।६७
मेरी वह शीलवती नारी,मेरे बिन अमित दुःखित होगी ।
पानी बिन कंठ मिले होंगे,या भ्रमती थकित क्षुधित होगी ।।६८
हे आर्य नरोत्तम! देखी हो, यदि कहीं आपने वह नारी ।
बतला दो पुण्य अधिक होगा, तुमतो दिखते अति उपकारी ।६९
जीवंधर मनमें हंसते थे,और उसे देख कर रोते थे ।
यह लख विडंबना इस जगकी,मनमें अति विस्मित होतेथे ।७०

।। दोहा ।।

तब उससे कहने लगे, जीवंधर सुकुमार ।
मित्र । हृदय धीरज धरो, रखो विवेक विचार ।।७१।।

× × ×

हे मित्र!वृथा क्यों रोते हो? नारी के कहीं उठ जाने पर ।
कैसे निकलेंगे प्राण मूर्ख ! वह नारि हाथ नहिं आने पर ।।७२
कुछ तो साहस रक्खो मनमें, तुम उत्तम पुरुष कहाते हो ।
नारी को खोकर रोते हो,कुछ मनमें नहीं लजाते हो ।।७३।।
यह नारि जाति अति चंचल है,इसकी चिंता कुछ करो नहीं ।
इसके वियोग में पागल हो हे मित्र ! इस तरह मरो नहीं ।।७४
जो शास्त्रन ब्रह्मा रच सकते,नहिं शुक्राचार्य समझ सकते ।
वह नारि बुद्धिमें भरा हुआ,इसको क्या आर्य!समझ सकते ।७५
निज पतिसे सदा उदास रहे,औरोंसे बोले हिल मिल कर ।
निज पतिसे छिपी हुई बातें,कहती औरोंको खुल खुल कर ।।७६

थोड़े से मुस्काने से ही, पति तो प्रसन्न हो जाते हैं ।
फिर क्या क्या करती रहती है,वे जरा समझ नहिं पाते हैं ।।७७
महाराज यशोधर के देखो,वह अमृतवती थी पटरानी ।
थी प्राणप्रिया उनकी पीतेथे, बार बार उस पर पानी ।।७८।।
जो दिखती पूरी पतिव्रता, बढ़ बढ़ कर बातें करती थी ।
कुबड़े सईस के संग सदा,वह व्यतीत रातें करती थीं ।।७९।।

।। दोहा ।।

मित्र ! हृदय धीरज धरो, मन मत करो उदास ।
करो न लेकिन भूल कर, नारी पर विश्वास ।।८०।।

× × ×

इतना उपदेश दिया लेकिन,खेचरको एक नहीं भाया ।
वह मंत्रमुग्धकी भांति रहा, चिल्लाता हा जाया ! जाया ।।८१
जीवंधर तत्क्षण उठे वहांसे,आगेका निज मार्ग लिया ।
काननसे निकल पुण्यपंथी,उपवनमें शीघ्र प्रवेश किया ।।८२।।
था हराभरा सुन्दर उपवन,सारी शोभाएं थीं उसमें ।
मालीने अति चातुर्यपूर्ण,सारी रचनायें की उसमें ।।८३।।
देखा अनेक नृपपुत्र वहां, कोदंड बाण निज करमें थे ।
फल आम्र तोडने को व्याकुल,सब व्यर्थ परिश्रम करते थे ।।८४
अतिशय प्रयास सब करते थे,पर लक्ष्यवेध नहिं होपाता ।
शर आस पास होकर फलसे,पश्चिम या पूर्व निकल जाता ।८५
यह दशा देख जीवक उनकी,सब कमजोरी को ताड़ गये ।
मुसकाते मंद मंद तब वे,उनके समीप तज आड़ गये ।।८६।।

कोदंड बाण लेकर करमें,जो एक बार ही मार दिया ।
सूई में यथा पिरो करके,झटसे पक्वाम्र उतार दिया ।।८७।।
यह देख अपूर्व कला कौशल,नृपपुत्र प्रसन्न हुए अतिशय ।
अपनी अयोग्यता पर लज्जा,और करतेथे उनपर विस्मय ।।८८
नृपपुत्रोंमें से प्रमुख पुत्र, साहस धर यों सविनय बोला ।
हे आर्य! आपने दर्शन देकर,भाग्य हमारा है खोला ।।८९।।
अब एक प्रार्थना विनयभरी,कर कृपा हमारी सुन लीजे ।
यदि हानि न हो तो संग हमारे,पुर में आप गमन कीजे ।।९०
है नगरी यह हेमाभपुरी,दृढ़मित्र यहां के भूपति हैं ।
हैं पुत्र अनेकों हम उनके,पर गुरुबिन सभी मंदमति हैं ।।९१
नृपपुत्रोचित कार्मुक विद्यासे,हम सब भ्रात अपरिचित हैं ।
जब लक्ष्यवेध अवसर आते,तब होते दुखी अपरिमित हैं ।।९२
हैं तात हमारे चिंतामें,कोई नरपुंगव मिल जावे ।
कोदंडवेद हमको सिखलादें,तो उनका जी खिल जावे ।।९३।
अतएव कृपा कर आर्य आप,हम संग राजगृह को चलिये ।
चिंतातुर तात हमारे हैं,दर्शन दे उनका दुःख हरिये ।।९४।।

।। दोहा ।।

सविनय वचनों से हुए, जीवक अमित प्रसन्न ।
नृप पुत्रों युत चल दिये, नगरी थी आसन्न ।।९५।।

× × ×

नृपकी परिषद में जब पहुंचे, नृपपुत्रों युत श्री जीवंधर ।
नृपने लक्षणसे जान लिया,है कोई नर यह वीर प्रवर ।।९६

उच्चासन दिया बैठनेको,अतिशय आदर सम्मान किया।
जीवक ने भी अति विनय भावसे,इनके मनमें स्थान किया ।९७
भूपतिने प्रेम भरे शब्दोंमें,प्रश्न किये जीवंधर से ।
अमृत से भरे हुए मानों,स्वर्गीय वृक्षके सुम वर से ।।९८।।
श्रीमान् कौनसे जनपदको,कर शून्य इधर को आते हैं ।
अब किसे पाद पूजित करनेको,आर्य इधर से जाते हैं ।।९९।।
जीवंधर सविनय बोले यों हे तात ! कहाँ से मैं आया ?
शास्त्रों से जाना इतना मैं नित्य निगोदों से आया ।।१००।।
जाना तो मुक्ति नगर में है,पर अभी भटकता हूँ जगमें ।
कर्मोंके कांटे बिछे हुए हैं, विकटरूपसे शिवमगमें ।।१०१।।
भूपति इतने में समझ गये,ये अपनी बात छिपाते हैं ।
होगा कारण ये इसीलिये,नहिं अपना भेद बताते हैं ।।१०२।
इतने में प्रमुख पुत्रने,उनकी धनुर्कला की चतुराई ।
देखी थी उपवनमें उसको,अति विस्तृत करके बतलाई ।।१०३
तब तो भूपति अतिमुदित हुए,बोले हे आर्य! कृपा कीजे ।
मेरे पुत्रों को राजनीति और धनुर्वेद शिक्षा दीजे ।।१०४।।
जीवंधरने प्रमुदित होकर,नृप आज्ञा को स्वीकार किया ।
लेकर नृप पुत्रों को उनने, शस्त्रालय को सुविहार किया ।।१०५
दी सकल कलाओंकी शिक्षा,और धनुर्वेदकी अतिशय कर ।
बनगये कुछ समयमें नृपसुत,प्रख्यातवीर और कार्मुक धर १०६
शिक्षण समाप्त करके स्वामीने,पुनः परीक्षण करवाया ।
एकत्र किये विद्वानों को,और उनका कौशल दिखलाया ।।१०७

भूपति प्रमुदित होकर बोले,हे आर्य! आपने तार दिया ।
शिक्षण नौका दे राजसुतों को,राजनीति के पार किया ॥१०८
इस महती उपकृति का प्रतिफल अब कहो आपको देवें क्या ?
करके हलका कुछ भार सभी संतोष श्वास हम लेवें क्या ? १०९
पर एक विनय है छोटीसी,उसको कृपया स्वीकार करें ।
तनया सु कनकमाला मेरी, उसको बस अंगीकार करें ॥११०
स्वामीको तो परिवार अधिकसे,अधिक सुविस्तृत करना था ।
फिर क्यों नहिं अंगीकृतकरते,इसमें उनको क्या डरना था १११

॥ दोहा ॥

शुभ दिन नृपने देखकर,करमंगल उत्साह ।
कनकमालिका का किया स्वामी संग विवाह ॥११२॥

इति श्री छन्दोवद्ध जीवधरचरित्र में कनकमाला
लाभ नामका सातवां लम्ब पूर्ण हुआ ॥४॥

अष्टम अध्याय

॥ दोहा ॥

अब स्वामी रहने लगे, कनकदाम के संग ।
सालों से करते हुए, अतिशय प्रेम प्रसंग ॥१॥

अब पाठक चलिये जरा, राजपुरी में आप ।
जहां छोड़ आये महा, पुरजनका सन्ताप ॥२॥

× × × ×

जब जीवंधर का शोक लिये,पुरवासी निज निज धाम गये ।
विधि की विचित्रता का,चिंतन करते नरनारि तमाम गये ॥३
नंदाढ्य और जीवंधरके, सब मित्र शोक संतप्त हुए ।
स्वामी वियोगमें वे मरने को, उद्यत और उद्दप्त हुए ॥४॥
गंधोत्कट और सुनन्दाने भी, सकरुण महा विलाप किया ।
पर मुनि वचनों से उनने,कैसेही मनको संतोष दिया ॥५॥
भाई, मित्रों का संघ, दुखित हो मरने को तैयार हुआ ।
तब एक दिवस मन में उनके, नूतन उत्पन्न विचार हुआ ॥६॥
है प्रजावती विद्याधरणी,उसको कुछ वृत्त विदित होगा ।
उससे चलकर पूछें यदि कुछ तो,शायद अपना हित होगा ॥७
यों कर विचार पहुंचे महलों में,मित्रवर्ग नन्दाढ्य सहित ।
गंधर्वदत्तिका बैठी थी,आमोद सहित और शोक रहित ॥८॥

॥ दोहा ॥

सर्व प्रथम नन्दाढ्य ने सविनय किया प्रणाम ।
फिर बोला कुछ कर कठिन, अपनी गिरा ललाम ॥९॥

× × ×

हे आर्ये! हम अति विस्मितहैं,कुछभी नहिं भेद समझ पाते ।
शृंगारिक भेष आपके ये,हमको न उचित हैं दिखलाते ॥१०
हैं पापयोग से अग्रज हमसे,हे पूज्ये ! वे जुदा हुए ।
आमोद प्रमोद विलासलासभी,उनहीं के संग विदा हुए ॥११।
कुलवती नारिको पति वियोगमें, जिसप्रकार रहना चहिये ।
हो क्षमा, आप नहिं हैं वैसी,बस यही आज कहना चहिये ॥१२
क्योंकर ये भूषण पहिने हो,और वस्त्र अनूपम धारे हो ।
आर्ये! असामयिक बिंदु भाल पर,अंजन दृगमें सारे हो ॥१३॥
ताम्बूल नहीं छूटे अब भी,मेंहदी हाथों में रची हुई ।
है दुःखी नगर,भर आमोदों की यहां धूमहै मची हुई ॥१४॥
आर्ये! ये सब कुछ अभी तजो,अथवा कुछ स्पष्टीकरण करो ।
कर क्षमा हमारा दृढ़ संशय, हे प्रजावती! अब शीघ्र हरो ॥१५
सुन गंधर्वदत्ता मुसकाई,फिर प्रेम सहित वह यों बोली ।
हे आर्य पुत्र! सुनिये सुनिये,हो ली बस बहुत बहुत हो ली ॥१६
हैं ज्येष्ठ आपके हम सम ही, हैं आर्यपुत्र हतभाग्य नहीं ।
जाते वे जहां संग रहता है,सेवा में सौभाग्य वहीं ॥१७॥
जिनके जाने को आप आर्यसुत,चिर वियोग बतलाते हो ।
अज्ञात भेद होनेसे ही सब आर्य,आप दुख पाते हो ॥१८॥

वे महापुण्य अधिकारीहैं,और दीर्घ आयुके हैं धारी ।
है कौन उन्हें दुःख दे सकता,आवें यदि सौ काष्ठांगारी ।।१६।
दे अब भी ससुख विराज रहे,हेमाभा नगरीके अन्दर ।
सेवामें उनकी खड़ी वहां भी सती कनकमाला सुन्दर ।।२०।।
यदि आप प्रमाण चाहते हो तो,आओ मैं बतलाती हूं ।
उनके समीप ही शीघ्र आपको,इसी समय पहुँचाती हूँ ।।२१।।

।। दोहा ।।

इतना सुन सबही हुए,अमित चकित सुकुमार ।
सबने मिल एकान्तमें,किया पुनः सुविचार ।।२२।।

× × × ×

बोला नन्दाढ्य मुझे पूज्ये! बस इसी समय वहां पहुंचादो ।
अवशेष मित्रगणको आर्ये! शुभ मार्ग वहां का बतलादो ।।२३
मैं अभी पहुंचता हूँ पहले,ये मित्र मार्गसे आयेंगे ।
दर्शन पालेंगे तो मातः! हम सब प्रसन्न होजायेंगे ।।२४।।
गंधर्वदत्ताने सब मित्रोंको,मार्ग वहां का बता दिया ।
कर बिदा उन्हें फिर देवर,को विद्याशय्या पर सुला दिया ।।२५
लिख प्रेम पत्र सौंपा उसको,विद्याको फिर आदेश दिया ।
ले उड़ी गगनगामिनी उसको,हेमामें शीघ्र प्रवेश किया ।।२६

।। दोहा ।।

आयुधगृहमें पहुंचकर,मुदित हुआ नंदाढ्य ।
प्रभू स्मरण करने लगा,वह स्नेहाढ्य गुणाढ्य ।।२७।।
स्वामी की इक अनुचरी,ने देखा नन्दाढ्य ।

समझी जीवंधर यहां,खड़े हुए सुगुणाढ्य ।।२८।।
चली गई वह महलको,देखा वहां कुमार ।
असमंजसमें पड़ गई, चेटी चकित अपार ।।२९।।

× × ×

जीवंधर उसको चकित देख बोले, चेटी! क्या बात हुई ।
आश्चर्य किसलिये करती हो,क्या नई बात कुछ ज्ञात हुई ।।३०
बोली चेटी अचकची हुई मैं, पड़ी हुई हूं चक्करमें ।
हैं आप यहां, आई लखकर,आपको अभी आयुधघरमें ।।३१।।
कुछ भी नहिं देर लगी मुझको,मैं सीधी यहीं चली आई ।
आगये किधरसे आप बात,बस यही समझमें नहिं आई ।।३२।
जीवंधरभी आश्चर्य सहित,पड़गये चित्रके चक्करमें ।
मुझ जैसा क्या नंदीढ्य चला,आयाहै आज शस्त्र घरमें ।।३३।
मैं वहुत समयसे बैठा हूँ,घरसे भी वाहर नहिं निकला ।
फिर मुझसा आयुधशालामें,उस विन आयाहै कौन चला ।।३४
चल दिये शीघ्रही जीवंधर,आश्चर्य सहित आयुधघरको ।
हो लिये साथमें सालेभी,यों चकित देख जीवंधरको ।।३५।।

।। दोहा ।।

पहुंचे शस्त्रागारमें,मिला वहीं नन्दाढ्य ।
आ हा! वाछें खिल गई,दोनों हुए सनाढ्य ।।३६।।

× × × × ×

वाहूसे वाहु, गलेसे गला, औ हृदय हृदय से चिपट गया ।
जीवक नंदाढ्य उभय भ्राताका,भ्रातृ प्रेम जव उमड़ गया ।३७

आंखोंसे अश्रूधार बहे और होठ उभयके मौन गहे ।
कीलितसे दोनों खड़े दूर हटनेकी उनसे कौन कहे ।।३८।।
चिर समय अवस्था यही रही,आखिर जब वेग हुआ धीमा ।
तब कठिन कठिनकर अलग हुए,औ हटी असंज्ञाकी सीमा ।।३९
संसृतिमें भ्रातृप्रेम जैसा,उत्कृष्ट प्रेम है और नहीं ।
जिसमें छल कपट स्वार्थ दंभादिकको,मिलती कुछ ठौर नहीं ४०
है जोड़ी जुगल भाइयोंकी जिस घरमें स्वर्ग वही तो है ।
है प्रेम जहां उन दोनोंमेंजगका अपवर्ग वही तो है ।।४१।।
सब कुछ है जगमें मिल सकता,पर सगे सहोदर दुर्लभ है ।
पर हाय आज,कल-युगमें,इनमें प्रेम परस्पर दुर्लभ है ।।४२।।
यदि चाहो प्रेम देखनातो,उस राम चौकड़ी में देखो ।
या देखो पांच पांडवोंमें,बलदेव कृष्णजी में देखो ।।४३।।
अथवा देखो आदर्श प्रेम,नन्दाढ्य और जीवंधरमें ।
दो भ्राता एक दीखते हैं,अवशिष्ट न भेद परस्परमें ।।४४।।

।। दोहा ।।

इस प्रकार जब होचुका,भ्राता युगल मिलाप ।
फिर दोनों ने ही किया,कुशल वार्तालाप ।।४५।।

× × ×

बोला नन्दाढ्य आपके दर्शनसे ही आर्य! कुशलता है ।
अब ही जीवनमें जीवनहै,जीवन्में अबहि सफलताहै ।।४६।।
सारा वृत्तान्त सुनाया फिर,जो राजपुरीमें था बीता ।
सब हाल सुनाया मित्रोंका,औ गंधर्वदत्ता की गीता ।।४७।।

वह प्रेमपत्र सौंपा उसका,जिसको पढ जीवक मुदित हुए ।
गंधर्वदत्ता गुणमालाके,सब भाव हृदयके विदित हुए ।।४८।।

।। दोहा ।।

भूपति ने नंदाढ्यका,किया अधिक सन्मान ।
भाई सालों युत रहे, जीवक मुदित महान ।।४९।।
अब पाठक चलिये जरा, राजपुरी की ओर ।
जीवंधरके मित्र सब, चले शीघ्र पुर जोर ।।५०।।

× × × ×

जब चलते चलते मित्र सभी दंडक वनके भीतर आये ।
तापसी वृन्दके पर्ण निकेतन उन्हें दृष्टि पथमें आये ।।५१।।
देखी उनहीके मध्य एक,अतिकृश तनु तरुणी तपस्विनी ।
जिसकी काया अवाछ्य दुःखोंसे,विकृत और विकराल बनी ५२
अति मलिन वस्त्रथे जीर्णशीर्ण, चेहरेकी कांति मलीन हुई ।
आंखें कपालमें धंसी हुई,वाणी जिसकी अति दीन हुई ।।५३।।
फिर पुण्यातिरिक्तता तो चेहरे से स्पष्ट झलकती थी ।
चिंता और दुःखसे दग्ध हुई,वह कल्पलतासी दिखतीथी ।।५४
तरुमूल शुष्क वदनी बैठी,जब इन सबको देखा जाते ।
तो पूछ लिया,पुत्रो! तुम सबहो,इधर कौन पुरसे आते ।।५५।।
बोला पद्मानन मातः! हम सब राजपुरी के बालक हैं ।
जिसका इस समय राजघातक,वह काष्ठागार नृपालक है ।।५६
उत्कंठा और बढ़ी मनमें पूछा,बच्चो! जातेहो किधर ।
हैं कौन आपके मात तात,और कौन आपके वंश प्रवर ।।५७।।

बोला पद्मास्य,राज्य श्रेष्ठी,सुत हूँ मातः! मैं पद्मानन ।
यह सत्यंधर महाराज सचिव सुत है,श्रीदत्त सुभद्रानन ।।५८।।
यह अचल पुत्रहै बुद्धिषेण,यह देवदत्त ये नपुल विपुल ।
नन्दाढ्य सहित हम सात मित्र,जीवक स्वामीके हैं अविकल ५९
जिस दिन स्वामीका जनम हुआ उसही दिन हम सब जन्मेथे ।
उनही के संग रमे खेले,गंधोत्कट के आंगन में थे ।।६०।।
फिर सबने विद्याध्ययन किया,व्याधोंसे गायें छुड़वाई ।
गंधर्वदत्ताका हुआ स्वयंवर,वहां जीवंधरने जय पाई ।।६१।।
गजका मद दूर किया वनमें,गुणमाला रक्षा कर पाई ।
यों राजपुरीमें जीवंधरने,कीर्तिलता निज फैलाई ।।६२।।
पर हत्यारे उस काष्ठ अंगारे,को वे बातें नहिं भूली ।
गज ताडनका अपराध लगा,बोला दे दो इसको शूली ।।६३।।

।। दोहा ।।

इतना सुन कर योगिनी, गिरी मूरछा युक्त ।
शीत पवन पाकर हुई, इस मूर्च्छा से मुक्त ।।६४।।

× × ×

मूर्छा तो दूर हुई लेकिन, अब करुण विलाप लगा होने ।
शिर पीट पीट आहें भर भर,वह लगी योगिनीयों रोने ।।६५।
हा हा हे पुत्र! कहांहो तुम,मैं यह क्या आज श्रवण करती ।
वह क्रूर विधि अबभी तुम पर,क्यों कुछ करुणा नहिं करती६६
हे नाथ!आपतो स्वर्गोंमें स्वर्गीय सुखोंको भोग रहे ।
हा हम पापी पृथ्वी परही,नारकी दुखोंको भोग रहे ।।६७।।

हेपुत्र! तुम्हारा मुखदर्शन भी,मैं नहिं पूरा कर पाई ।
छिटका कर भाग्य भरोसे पर,मैं बनमें इधर निकल आई ॥६८
पतिके वियोगको सह कर भी, कानन में वास किया मैंने ।
तेरी उन्नतिकी आशामें ही, अब तक श्वास लिया मैंने ॥६९॥
पर जिस हत्यारे ने तेरे,श्री पूज्य पिता का घात किया ।
उसने तुझको भी शूली देकर,अपना पथ अवदात किया ॥७०
वह स्वप्न गया मेरा निष्फल,शारीरिक लक्षण व्यर्थ हुए ।
वे वचन देवताके भी क्या,सच्चेपनमें असमर्थ हुए ॥७१॥
बस इस प्रकार वह रोती थी,नहिं बात किसीकी सुनतीथी ।
केवल अपनीही धुनमें वह,बस अपना मस्तक धुनती थी ।७२
फिर कहा अन्तमें पति न रहे, और पुत्र गया उनके पीछे ।
हे पुत्र ! ठहर मैं भी आती हूँ, बस तेरे पीछे पीछे ॥७३॥

॥ दोहा ॥

तब पद्मानन ने कहा, पकड़ मात का हाथ ।
माता तुम सुनती नहीं, पूरी मेरी बात ॥७४॥

× × × × ×

जीवंधर सकुशल बैठेहैं,उनको है कौन मार सकता ।
देवोंका स्वामीभी है क्या,मनुजोंसे कभी हार सकता ॥७५॥
शूली उसने देनी चाही,पर कर न सका वह मनमानी ।
वेचलेगये किस ओर किधरको,यहबात किसीने नहिंजानी ॥७६
अब हुआहै ज्ञात पता उनका,हम उनसे मिलने जाते हैं ।
मातः! तुम धैर्य धरो,उनको हम सत्वर लेकर आते हैं ॥७७॥

॥ दोहा ॥

यह सुनकर वह योगिनी, हुई प्रसन्न नितान्त ।
पञ्चाननके वचनसे,किया चित्तको शान्त ॥७८॥

× × × × ×

तब मित्रवर्ग आगे चलकर,हेमाभामें पहुंचे क्रम कर ।
नगरीके बाहर ग्वालोंसे छीना,सब गोधन धमकाकर ॥७९॥
ग्वालोंने जा फर्यादकरी,धनपतिसे करुणाके स्वरमें ।
मच गई खलबली सेनामें,कुछही क्षणमें नगरी भरमें ॥८०॥
भूपतिने तब आदेश दिया,अपने पुत्रोंको जानेका ।
व्याधोंको मार भगानेका गोद्रव्य छुड़ाकर लानेका ॥८१॥
नंदाढ्ग और जोवकने भी नृप पुत्रों सह प्रस्थान किया ।
बनमें जातेही तब उनने,निज मित्रोंको पहचान लिया ॥८२
रणभेरी अब आनन्द स्वरोंमें,गूंज उठी तत्क्षण वनमें ।
शोणित सरिताकी जगह हर्ष सरिता,बह निकली आंगनमें ।८३

॥ दोहा ॥

मिले मित्रगण प्रेम से, गला गले में डाल ।
हुए परस्पर सर्व ही, हर्षित अमित निहाल ॥८४॥
आये सब ही नगर में, करते प्रेम प्रसंग ।
बदल गये आनन्द में, संगर के सब रंग ॥८५॥

× × × × ×

कुछ दिन विश्राम किया सतने,फिर मित्रोंने वह बात कही ।
सुकुमार तुम्हारी जननी वनमें, व्याकुल होकर तड़प रही ॥८६

उसकी सुध लो पहले चलकर, आमोद प्रमोद तजो सारे ।
जननी के दर्शन करके अपना, जीवन सफल करो प्यारे ।।८७
सब सुनीकथा निज माता की,तब जीवंधर अतिदुखित हुए ।
चलने को व्यग्र हुए तत्क्षण,उत्कंठित मनमें अमित हुए ।।८८
आज्ञा भूपति से मांग, कनकमाला से सारा भेद कहा ।
अब माताके दर्शन विन मुझसे, जाता पल भर भी नरहा ८९
चल दिये शीघ्र सुकुमार वहां से. सब मित्रों को संग लिये ।
भूली जननी से मिलनेकी मनमें,अतिशयित उमंग लिये ।।९०
दंडक वनमें पहुंचे जबही,जननीके तब ही दर्श किये ।
विरहार्णव उरमें उमड़ पड़ा.जब अंग उभयने स्पर्श किये ९१
आंखोंसे अश्रूधार चली,और स्तनसे दूध नदी निकली ।
चिर पोषित मनमें विरहानलकी यह सब गरमीसी निकली९२
हिचकी गर्जन युत शोक घनाघन,आज अचानक उमड़ पड़े ।
आंखोंके रस्ते प्रबल वेग,मूसलधारासे बरस पड़े ।।९३।
कर स्मरण पूर्व बातें सारी,करतेथे दोनों विकट रुदन ।
सुनकर करुणाने व्याकुल होकर,बंदकर लिया अपना सदन९४
मित्रोंने मिलकर समझाया,और वेग हृदयका मंद हुआ ।
वह करुण विलाप कठिनतासे,तबही दोनोंका बंद हुआ ।।९५
तब बोली माता दुखित हृदय, बेटा! क्या तुझको ज्ञान नहीं ।
इस पृथ्वी पर पद धरने को, तुझको अंगुल भर स्थाननहीं९६
बेटा ! क्या राज्य पिताका अपना,तुम फिर वापिस लेलोगे ।
या इसी तरह भ्रमते भ्रमते,विपदायें सिर पर झेलोगे ।।९७।

बोलो, क्या मैं विश्वास करूं, होऊंगी कभी राजमाता?
पृथ्वी पर पुनः दिखेगा क्या,कुरुवंशकेतु वह लहराता ॥६८।
बोले जीवक कुछ मंद गिरासे,माता मनमें धैर्य धरो ।
सब होगा औ अवश्य होगा,तुम मनमें दृढ़ विश्वास करो ६६
अन्यायी दंडित होगाही,न्यायीको राज्य मिलेगाही ।
नहिं भूल ईश के यहां शीघ्र,सच्चा निर्णय निकलेगाही १००
कुरुवंश केतु लहरायेगा, और तुम्हीं राजमाता होगी ।
यह धरा तुम्हारी ही होगी, तुम चाहोगी उसको दोगी ॥१०१

॥ दोहा ॥

यह सुन कर विजया सती, हुई प्रसन्न नितान्त ।
मानों करमें आगया, हो अपना भू प्रान्त ॥१०२॥

× × ×

अन्तमें कुंवरने माताको, वनसे पहुंचा ननिहाल दिया ।
फिर मित्रोंयुत आ राजपुरी,उपवनमें डेरा डाल दिया ॥१०३
मित्रों को ठहरा उपवनमें,कुछ किया भेषमें परिवर्तन ।
चल दिये नगरमें जीवंधर,करनेको तातपुरी दर्शन ॥१०४॥
जननी औ जन्मभूमि होती,स्वर्गोंसे भी अतिशय प्यारी ।
सो मिली आज जीवंधरको,दोनोंही वस्तु प्रमुदकारी ॥१०५
इस तरह भ्रमण करते जीवंधर, जा पहुंचे बाजारों में ।
व्यापारी वर्गोंमें पहुंचे,जौहरियों साहूकारों में ॥१०६॥
कुछ चहल पहलथी अधिक,अतः जीवंधर ठहर गये वहांही ।
अच्छीसी दुकान देखकरके,तत्क्षण वे बैठ गये वहांही ॥१०७

मणि रत्न जवाहरकी दुकानथी,किन्तु वहां ग्राहक कम थे ।
इसलिये स्थान था रिक्त वहां,और वहां मार्गवाहक कमथे१०८
श्रेष्ठीसे आज्ञा लेकरके,जीवंधर ज्यों बैठे ही थे ।
त्यों ही आये ग्राहक वहुते, मानों वे समीपमें बैठे थे ॥१०६
श्रेष्ठीने तो उनसे उलझ गये,मणि आदिक उनको देने लगे ।
और स्वामी इधर नगर दर्शनका,आनंद पूरा लेने लगे ॥११०
श्रेष्ठी ने तो मणि माणिक, आदिक बेचे आज हजारों के ।
और स्वामी इधर देखतेथे,मनमोहक दृश्य बजारोंके ॥१११
इतनेमें कंदुक एक गिरी,आकर स्वामीके मस्तक पर ।
थी क्षौम वस्त्रसे मंढी हुई,और काम सुनहरीथा उसपर ।११२
विस्मित होकर देखा उसको,फिर शीश उठा ऊपर देखा ।
पृथ्वी सौंदर्य निरखने शशिसा,मुख उनने ऊपर देखा ॥११३
सुकुमारी एक झरोखे से थी,अधोदृष्टि कर झांक रही ।
शायद वह अपनी कंदुक या,कंदुकवालेको ताक रही ॥११४
एक ने दूसरे को देखा,बंध गई टकटकी दोनों की ।
सोई सी संज्ञा कारण पाकर,यथा जग उठी दोनों की ॥११५

॥ दोहा ॥

बोले जीवंधर तभी, सस्मित हो प्रिय बैन ।
मुसाफिरों को मारना,उचित सुन्दरी है न ॥११६॥
उत्तर में बोली पुनः, प्रिय सुकुमारी बैन ।
वस्तु किसीकी चोरना,उचित मनोहर है न ॥११७॥

× × ×

बोले जीवक सुन्दरि! कृपया,इन घावों पर मल्हम कीजे ।
बोली सुकुमारी आर्यपुत्र! मेरी तो वस्तु मुझे दीजे ।।११८।।
बोले जीवधर वस्तु तुम्हारी,मेरे पास सुरक्षित है ।
पर कृपया इन्हें सुखा देना,जो मेरे हृदय हुए क्षत है ।।११९
इतना कह कर जीवंधर उठकर,गये निकेतन द्वार जहां ।
जम गये गोखड़े पर पहरा देते थे, पहरेदार जहां ।।१२०
इतने में आये सेठ वही जो,उस दुकानके स्वामीथे ।
वे इस घरके भी स्वामीथे,और सेठ नगरमें नामीथे ।।१२१
बोले तब कपट कोप करके,वे श्रेष्ठी 'आप यहां कैसे' ।
लाये मम रत्न चुरा करके,बैठे तब आप यहां कैसे ? ।१२२
तुम चोर बड़े ही अद्‌भुत हो'जो मणि अमूल्यकी चोरीकर ।
पाने को बंधन ऊपरसे,आगये स्वयं कारागृह पर ।।१२३।।
अब कृपया भीतरको चलिये,हथकडियों को शोभित करिये ।
जंजीर पहनिये पांवों में,और तोक गले के बिच धरिये १२४
जीवंधर चुपके बैठे थे,चल दिये सेठ के संग भीतर ।
मनमें सब भेद समझते थे,पर बने हुए कातर ऊपर ।।१२५

।। दोहा ।।

वस्त्राभूषण सेठ ने, मंगवाये तत्काल ।
पहनाये सुकुमार को, कंगन कुण्ठल माल ।।१२६।।
तब कमला निज भामिनी, औ विमला निज बाल ।
पास बुलाकर सेठ ने, कहा कुंवर से हाल ।।१२७।।

सुकुमार क्षमा करिये मुझको, मैंने जो शब्द कठोर कहे ।
वे शब्द और के और रहे, तात्पर्य और के और रहे ।।१२८
मेरी पत्नी यह कमला है, उससे पुत्री यह विमला है ।
सौंदर्य कला चातुर्यपूर्ण, गुणवती हृदय से सरला है ।।१२९
जब यह विवाहके योग्य हुई,तब नहीं योग्य वर मिलता था ।
धनहीन कहीं घरहीनकहीं वरहीनकहीं पर मिलताथा ।।१३०
नैमित्तक गण से पूछा तब, उनने नियोग यों बतलाया ।
सर्वोत्तम वरका प्राप्ति मार्ग,उननेहमको यों दिखलाया ।।१३१

।। दोहा ।।

पड़े हुए चिरकालसे,बिना बिके जो रत्न ।
जिनके आने पर बिके,दे बहु लाभ अयत्न ।।१३२।।
भाग्यवान वह पुरुष ही,इस कन्या का कन्त ।
इस प्रकार वे कह गये,मुझे ज्योतिषी सन्त ।।१३३।।
इधर कृपा कर आपने,किया पदार्पण आज ।
वे सब बिक्री होगये,मेरे रत्न समाज ।।१३४।।
अतः कृपाकर कीजिये,विनती अंगीकार ।
विमलाको अति प्रेमयुत,कर लीजे स्वीकार ।।१३५।।
मनवांछित जब मिल गई,वस्तु सहित सम्मान ।
स्वामीने स्वीकृत करी विमला अति हित ठान ।।१३६

इति श्री छन्दोबद्ध जीवंधर चरित्र में विमला
लाभ आठवां लम्ब पूर्ण हुआ ।।८।।

नवम अध्याय

॥ दोहा ॥

जब पहुंचे कुरुवंश मणि, निजमित्रों के पास ।
विमला से परिणयन कर, सप्रमोद सोल्लास ॥१॥
मित्रों ने देखा उन्हें, परिणयचिन्ह समेत ।
बोले अतिशय फल रहा, मित्र पुण्यका खेत ॥२॥

× × × ×

की बहुत प्रशंसा मित्रोंने,स्वामीके प्रबल शुभोदय की ।
कु समय की बेला बीत गई,अब आई उत्तम बेलाथी ॥३॥
स्वामी के सातों मित्रोंमें था,बुद्धिषेण अतिहास्यमयी ।
शायद वह प्रकृतिदत्तही था,खुशदिल व प्रमोदी आस्यमयी ।४
उसको सुसमय व कुसमयमें, दिल्लगियां सूझा करतीं ।
उसकी प्रतिभा प्रति समय, बखेड़ों झगड़ों से जूझा करती ।५
जब मित्रोंने जीवंधरके, सौभाग्यों की सुप्रशंसा की ।
तब उसने भी कुछ व्यंग्य चलाने को, निज मनमें मंशाकी ।
बोला-मित्रो ! तुम हो कोरे, गोबर गणेश कुछ बुद्धि नहीं ।
विमला से उद्वह कर लाये,इसमें नहिं है तारीफ कहीं ॥७॥
जिसको नहिं चाहें अन्य पुरुष,उसको ब्याह लाये क्या लाये ।
किंशुक की माला गूंथ गांथकर,अपना हृदय सजा लाये ॥८

मेरी सम्मति में तो कुमार, तब ही सुप्रशंस्य गिने जावें ।
जब परमसुंदरी अभिमानिन,सुरमंजरिको येव्याह करलावें।।६
जो पुरुष मात्र के दर्शनको भी,अपना अशकुन कहती है ।
अत एव नारियों के पहरे में, कन्यागृह में रहती है ।।१०।

।। दोहा ।।

इतना सुन कर चल दिये, जीवंधर सुकुमार ।
कर उरमें सुरमंजरी, लाने का सुविचार ।।११।।

× × × ×

बोले-मित्रों की इच्छा तो, अब पूरी करनी ही होगी ।
अपनी इच्छाके ऊपर भी,सुरमंजरि वरनी ही होगी ।।१२।।
यों कह कर उपवनसे निकले,और यक्ष मंत्रका स्मरण किया ।
तब वृद्ध विप्रका रूप धरा, और राजपुरीमें चरण दिया ।१३
अहि तन निर्गत निर्मोक सदृश, तनु त्वचा बनाई शबलीसी ।
करमें लम्बी सी लाठी ली, और कुब्ज पीठमें निकलीसी ।१४
शुक्तिका भस्मधवलितव पलितथा केशपाश जिसके सिरपर ।
वह मस्तक कंपताथा थर थर,फिरभी चलनेमें था तत्पर ।१५
पद पद पर खुलखुल करता था,और पुनः हांफने लगता था ।
लेकर थोड़ा विश्राम पुनः, वह मार्ग नापने लगता था ।।१६
लख कर इसका यह विषम,रूप पुरवासी विस्मय लाते थे ।
कोई वैराग्य जगाते थे, और कोई दया दिखाते थे ।।१७।।

॥ दोहा ॥

इस प्रकार जर्जर बने, जाते चले कुमार ।
क्रमशः पहुंचे अन्तमें, सुरमंजरि के द्वार ॥१८॥

× × × ×

दौवारिक सुंदरियां उनका, वह रूप देखकर चकराईं ।
हंसतीथी देख देख सबही,उस वृद्ध पुरुषकी बुढ़वाई ॥१९॥
आखिर जब एक सुन्दरीने, पूछा कुछ जागृतसी होकर ।
बाबा है तुम्हें कहां जाना,बढ़ते जाते हो कहां इधर ॥२०॥
बोले बाबा तब खिसिया कर, तुमको इससे करना क्या है ?
है जहां कुमारी तीर्थ समझलो, हमें वहां ही जाना है ॥२१
फिर उमड़ पड़ा तूफान हंसी का, कुछभी करते बना नहीं ।
उस हंसी हंसी में मुग्ध हुई, आया उनको रोकना नहीं ॥२२
बाबा जा पहुंचे महलों में,सुरमंजरिका रहती थी जिनमें ।
वहअभिमानिनिनरविरोधिनी,सुंदरि बसती थी जिनमें ॥
बाबा पहुंचे ही थे इतने में, द्वार रक्षिका भी आई ।
बाबाकी सारी करतूतों को, सुरमंजरिको बतलाई ॥२४॥
सुरमंजरिको भी वृद्ध रूप पर, दया हृदय उत्पन्न हुई ।
उन विचित्रताओंको सुनकर,उलटी वह हृदय प्रसन्न हुई ॥२५
बोली, रहने दो बूढ़ा है, बूढ़े तो क्षम्य हुआ करते ।
इनके सब कार्य विचित्र और,संभाषण रम्य हुआ करते ॥२६

बोली फिर बूढ़ा भूखा है, इसको कुछ भोजन करवाओ ।
भोजन पीछे विश्राम हेतु बस, यहीं बिछावन करवाओ ।।२७

।। दोहा ।।

यों बूढ़े का होगया, समुचित सर्व प्रबंध ।
भोजन कर विश्राम हित, लेट गया सानन्द ।।२८।।

× × × ×

क्रमशः रवि अस्ताचल पहुंचे,संध्याका जगमें राज हुआ ।
छिप गया प्रकाश तारकों में,और अंधकार साम्राज्य हुआ ।।२९
मणियोंके दीपक महलोंमें,जल उठे मनोहर कांति लिये ।
क्षणदा बढ़तीही जाती थी,अपने उरमें चिर शांति लिये ।।३०
जब अर्द्ध निशा का समय हुआ, संसृति निद्रामें लीन हुई ।
सुरमंजरि भी दासियों सहित, सुख निद्राके आधीन हुई ।।३१
बूढ़े बाबा को क्या सूझा, उस समय गान प्रारंभ किया ।
इस समय प्रयोग किया उसका,जो यक्षेश्वरने मंत्र दिया ।।३२
ठंडी उस अर्धनिशामें जब,स्वरलहरी की झंकार उठी ।
संयोगी जनको सुधाधार,विरही जनको अंगार उठी ।।३३।।
क्रमशः बढ़ती यह स्वरलहरी, जब फैल गई नभमंडलमें ।
जागृत हो उठी चेतनायें,पुरमें उपवन औ जंगलमें ।।३४।।
गंधर्वी स्वर सहलाने लगी,और किन्नरी पद ठमकाने लगी ।
अहिबाला भी मदमत्त हुई,आनंद हिलोरें खाने लगीं ।।३५।।
सुरमंजरि जगकर उठ वैठी,स्वर पर जब उसने ध्यान दिया ।
खगसुता स्वयंवर जीवंधरके,स्वरको तब पहिचान लिया ।।३६

विस्मय का वारिधि उमड़ पड़ा, बोली यह कैसी लीला है।
जीवंधर के स्वरवत् ही यह भी सुमधुर और रसीला है।।३७।।
क्या यह उनका सहपाठी है, पर यह भी नहीं मानने की।
शायद गुरु हो लेकिन मनमें, इच्छा है भेद जानने की ।।३८।।
जग उठी दासियां भी तब तक, मनमें उत्कंठित हुईं बड़ी।
उस वृद्ध पुरुषके निकट पहुंचनै को,सब ही होगई खड़ी ।।३९
जब पहुंची निकट, वृद्धने तत्क्षण अपना गाना बंद किया।
मर्माहत हुई सभी मनमें, उनका कुंठित आनंद किया ।।४०।।
बोली चेटी तब एक विनययुत, बाबाजी गाते जाओ।
स्वरसुधा वदन विधुसे निर्गत,वह मधुरपिलाते रस जाओ।४१
बाबाजी सुनकर ऐंठ गये, बोले हम क्यों गाते जावें।
मिलती नहिं सुधा मुफ्त में है,क्या दोगी जो पाये जावें ।।४२
बोली चेटी बाबाजी हम,अबलायें क्या हैं दे सकतीं।
बोले बाबा, है एक वस्तु यदि, चाहो तुम तो दे सकतीं ।।४३

॥ दोहा ॥

सखी तुम्हारी मंजरी, यदि हमसे दो ब्याह।
तो हम भी पूरी करें, सुनो तुम्हारी चाह ।।४४।।
सुन कर सब चलती बनीं, लज्जित हो चुपचाप।
लगी मंजरी सोचने, यों फिर अपने आप ।।४५।।
बाबा दिखता है गुणी, यद्यपि बड़ा हंसोड़।
क्यों न व्यथा कहदूं इसे, अपना मान मरोड़ ।।४६।।

चिंता में बीती निशा, उदित हुआ सुप्रभात ।
एकांकी मंजरि चली, कहने मन की बात ॥४७॥

× × × ×

बोली सुरमंजरि विनय सहित, बाबाजी ! कृपया बतलाओ !
गायनसम किनकिनबातोंमें,होनिपुणआप यहजतलाओ॥४८॥
बोले बाबाजी मुसकाकर, है कौन काम वह दुनिया का ।
जिसको करना हम नहिं जाने सौ वर्षों का बुड्ढा बांका ॥४६
वैद्यक ज्योतिष जादू टोने, झाड़ा फूंकी जन्तर मन्तर ।
मारण उच्चाटन वशीकरण,सबही गुणहैं मेरे अन्दर ॥५०
जिन्दे को मैं मुर्दा करदूं, मुर्दे से बातें करवादूं
तारों को पृथ्वी पर लादूं, पृथ्वी को नभ पर धरवादूं॥५१।
आगे पीछे की बतलादूं, पृथ्वी की माया दिखलादूं ।
सूखे संन्यासी के मन को भी, प्रेम की पाटी सिखलादूं ॥५२
दुश्मन को मार धरूं पलमें, मित्रों को लाकर मिलवादूं ।
प्रेमी को लाखों कोसोंसे मैं, अभी हालही बुलवादूं ॥५३॥

॥ दोहा ॥

सुन, बोली सुरमंजरी,बस बस वार्धिकराज ।
समझ गई मैं आपमें, है सब सुगुण समाज ॥५४॥
किन्तु विनय मम एक है, हो यदि वह स्वीकार ।
तो मुझ पर द्विजराज का, होगा अति उपकार ॥५५॥

× × ×

बोले तब बाबा मुस्काकर, बोलो ! क्या बात तुम्हारी है ।

हम क्यों न सुनेंगे जब तुमने भी, रक्खी बात हमारीहै ।।५६
बोली तब मंजरि चुपके से सुनिये बाबाजी! कहती हूं ।
संक्षेप यही है मैं दुविधा के दुःख सागर में बहती हूं ।।५७।।
गंधोत्कट के थे पुत्र एक, जीवंधर जो कहलाते थे ।
सब कलापूर्ण वे पुरुष श्रेष्ठ, नगरी में समझे जाते थे ।।५८।।
था किया उन्होंने एक बार, मुझको सखियों में अपमानित ।
मैं भी अभिमानिनी पूरी हूं, यह है नगरी में सर्वविदित ।।५६
मैंने भी भीष्म प्रतिज्ञा की, नर का मुख तब तक देखूं नहीं ।
इस घोर पराभवका बदला, स्वामीसे जब ले सकूं नहीं ।।६०
स्वामी से बदला लेने का यह मार्ग किया मैंने निश्चय ।
उनहीका मुख देखूंगी और, करूंगी उनसे हीपरिणय ।।६१।।
इतने में मैंने सुना एकदिन, स्वामी अन्तर्धान हुए ।
सुनते ही बाबा मेरे तो, मंसूबे सारे म्लान हुए ।।६२।।
सोचा है मैंने कई बार, जब वे न रहे तो क्या करना ।
विषखाकर प्राणत्यागना, या दीक्षालेकरवनवनफिरना ।।६३।।
पर सुनती हूं गंधर्वदत्ता, अब भी शृंगार बनाती है ।
बस यही बातहै जो मेरा मन, बार बार अटकातीहै ।।६४।।
भोगों की तृष्णा मिटी नहीं, पर दिखते नही आसार भले ।
दुविधामेंही बाबा! मेरे, येस्वर्ण दिवस जाते निकले ।।६५।।
अब यही पूछना है मुझको, जीवंधर फिर क्या आवेंगे ।
अपनी पावक में भस्म हो रही, मुझको आन बचावेंगे ।।६६
उनके नहिं आने का निश्चय भी, बाबाजी यदि हो जावे ।

तो सांसारिक भोगोंकी तृष्णा, अस्त हृदय से हो जावे ।।६७-

।। दोहा ।।

इतना सुनकर वृद्धजी, मुख पर ला मुस्कान ।
बोले, सुन सुरमंजरी, बात लगा कर कान ।।६८।।
समझ चुका तेरी व्यथा, अब मैं कहूं उपाय ।
जीवंधर तुमसे मिले, स्वतः कहीं से आय ।।६९।।

× × ×

नगरी के बाहर उपवन है, उसमें है मनमथ का मंदिर ।
पुष्पायुध स्वयं विराजरहे,रतिरानी युत जिसकेअन्दर।।७०।।
करस्नान वसन भूषण पहनो, तन पर सोलह शृंगार करो ।
पूजाकी सामग्री लेकर, उपवनकी ओर विहार करो ।।७१।।
रति सहित काम की पूजा कर, मांगो उनसे यह सुन्दर वर ।
आकर दर्शन दें मुझे यहीं, मेरे मनवासी जीवंधर ।।७२।।
मैं कहता हूं निश्चय तुमको, जीवन्धर होंगे जहां कहीं ।
रतिपति आज्ञासे खिंच आकर, दर्शनदेंगे वे तुम्हेंवहीं ।।७३।।
मैं संग तुम्हारे चलता हूं, कुछ भय मनमें तुम मत लाओ ।
शृंगार करो, पूजा सामग्री, लेकर सत्वर आ जाओ ।।७४।।

।। दोहा ।।

वृद्धवचन सुन मंजरी, प्रमुदित हुई महान ।
चली गई अति शीघ्र ही, वह करने को स्नान ।।७५।।

× × ×

सोलह श्रृंगार सजे तन पर, कर में पूजा की सामग्री ।
प्रिय दासी एकसंग लेकर, द्विजके समीप आ हुई खड़ी ।।७६।।
चल दिये शीघ्र उपवनकी ओर,क्रमशः पहुंचेसब उपवनमें ।
उठते अनेक संकल्प मंजरी, औ जीवन्धर के मनमें ।।७७।।

स्वामी ने अपने मित्रों को, दूरी से ही संकेत किया ।
मंजरीसहित फिर मनमथके मंदिरमें शीघ्रप्रवेश किया ।।७८।।
मंजरी प्रेमसे मन्मथ की, पूजा करने में लीन हुई ।
वह महा मानिनी गद्गदहो,सिररगड़ रहीथी दीन हुई।।७९।।

।। दोहा ।।

पूजा कर सुरमंजरी, करने लगी पुकार ।
विनय सहित रति काम से, यों फिर बारंबार ।।८०।।

× × × × ×

हे कामदेव ! तुम कामीजन के, इष्ट देव कहलाते हो ।
अपने भक्तों की मनोकामना, तत्क्षण दूर कराते हो ।।८१।।
पर इधर नैन क्यों बंद किये मेरी सुधबुध कुछ लेते नहीं ।
मेरे मन की दुर्दशा देख, इसको औषधि कुछ देतेनहीं ।।८२।।
मैंने क्या हैं अपराध किये, जो तुम मुझ से यों रुष्ट हुए ।
और शेष तुम्हें क्या देतेहैं,जो उनपर हो सन्तुष्ट हुए ।।८३।।

जब देव आप कहलाते हो तो, पक्षपात मत किया करो ।
दुनिया की सुधि लेते हो वैसे मेरीभी सुधिलिया करो ।।८४।।
रतिरानी ! तुम ही दया करो, मैं भी तो बहिन तुम्हारी हूं ।

तुमतो निज प्रियसंग बैठीहो,और मैंरोती दुखियारी हूं।।८५।।
मुझकोभी अपनीसी करलो,या तुमभी मुझसी वन जाओ ।
नहिं तो मैं बिगड़ उठूंगी बस इतनेमें आप समझ जाओ ८६
कर क्षमा धृष्टता को मेरी, मित्त उभय मुझे यदि देदो वर ।
मुझसेभी आकर शीघ्र मिलें,मेरे मनवासी जीवन्धर ।।८७।।

।। दोहा ।।

इस प्रकार जब कर चुकी, मंजरी करुण पुकार ।
उसी समय उसने सुनी, मनमथ गिरा उदार ।।८८।।
दुःखी न हो सुरमन्जरी, मन मत करे उदास ।
पीछे फिर कर देखले जीवन्धर हैं पास ।।८९।।

× × ×

सुरमञ्जरि ने समझा मन्मथ हैं, मुझ पर पूर्ण प्रसन्न हुए ।
बूढ़े की बातें सत्य हुईं, मेरे सब सफल प्रयत्न हुए ।।९०।।
किंचित् ग्रीवा को वक्र करी और दृष्टि सलज पीछे डाली ।
देखा जीवन्धर खड़े हुए हैं, उसके मनके बनमाली ।।९१।।
गड़ गई शर्म से वह तत्क्षण, जीवक आनन्द विभोर हुए ।
कर प्रणयरीति कुछ,मन्मथ के गृहसे बाहरकी ओर हुए।।९२
आ गये तभी सब सुहृद, बधाई देने को जीवन्धर को ।
तत्क्षण दासी के संग मन्जरी चली गई अपने घर को ।।९३।।
बूढ़े बाबा के लिए दृष्टि, दौड़ाई पर वह गायब था ।
होता तोवह पूजा करती,उसही का यह प्रतापसब था ।।९४।।

घर जाने पर दासी से माता, पिता भेद सब जान गये ।
जीवन्धर में रति देख कुमारी,को वे हृदय प्रसन्न हुए ।।६५।।
अब इधर सुहृद स्वामी के भी जब मिले परस्पर हर्ष लिये ।
सप्रेम बधाई देते थे, सब स्वामी को उत्कर्ष लिये ।।६६।।
स्वामीने सबको धन्यवाद, अति प्रेम सहित शतवार दिया ।
पर बुद्धिषेणको चपत लगाकर,सर्वाधिक उपहार दिया।।६७।।
पर बुद्धिषेण बोला स्वामी मैंने सब दोष उतार दिया ।
जब कामसूर्ति के नीचे से, वरदान शब्द उच्चार दिया ।।६८।

।। दोहा ।।

स्वामी ने तब प्रेम से, उसे लगाया अंग ।
इस प्रकार करते रहे, वे सब प्रेम प्रसंग ।।६६।।
सुरमंजरि के तात ने बुलवाये सुकुमार ।
मित्रोंयुत पहुंचे कुंवर, करते हर्ष प्रचार ।।१००।।
शुभ मुहूर्त में कर दिया, उसने कर उत्साह ।
सुरमंजरि सुकुमार का आदर सहित विवाह ।।१०१।।

इति श्री छन्दोबद्ध जीवंधर चरित्र में सुरमंजरि लाभ
नाम का नवमा लम्ब पूर्ण हुआ ।।५।।

दसम अध्याय

॥ दोहा ॥

प्राप्त कर चुके मंजरी, जीवंधर सुकुमार ।
और चरित्र आगे सुनो, पुन्य-पाप-विस्तार ॥१॥

× × × × ×

समझा कर मंजरि को जीवक, अपने मित्रों को संग लिये ।
निज भवन शीघ्र पहुंचे अतिशय,मनमें आनंदउमंग लिये॥२॥
पितु माता के नैनों में जैसे अमृत अंजन आंज दिया ।
उनके चरणों में जीवंधरने, प्रेम सहित सुप्रणाम किया ॥३
खोई निधि जैसे प्राप्त हुई, ऐसे पितु माता मुदित हुए ।
मानों निशिकाट वर्ष भर की,दिननाथ आजही उदितहुए ॥४
कर प्राप्त शुभाशीः और अनुज्ञा, जीवंधर पितुमाता से ।
सामोद उमंगें लिये चले, मिलने को गंधर्वदत्ता से ॥५॥
प्रियतम दर्शन से खगतनया, आनंदित वचनातीत हुई ।
अतिशयित पुण्यकी महिमा ही,यहउसको आजप्रतीत हुई ॥६
बोली सप्रेम प्राणपति से, मैं तो कृतार्थ हो गई विभो ।
अब दर्शन दीजे गुणमाला को,जो है गतार्थ होरही विभो !॥७
मूर्छित होती है पल पल में, भवदीय विरह से हो व्याकुल ।

तनुलता क्षीणहोती जाती,प्रतिदिनउसकी दुखमें घुलघुल ।।८
अतएव प्रथम दें दर्श उसे, फिर आप पधारें इस गृह में।
सुनकर जीवक पहुंचे खगपुत्री के अथाह उर की तह में ।।९।।

।। दोहा ।।

फिर पहुंचे सुकुमारजी, गुणमाला के गेह ।
लख बाला के हृदय में उमड़ा सागर स्नेह ।।१०।।

× × × ×

इस सागरकी उमड़ी लहरोंको,वह सह न सकी दुखिया बाला
मूर्छित हो गई विमोहित हो, प्रियतम दर्शनसे गुणमाला ।।११
शीतोपचार से सजग हुई, पर वचन स्नेह संरुद्ध हुए ।
बाहर नहिं आने पाते थे जो मनमें भाव प्रबुद्ध हुए ।।१२।।
आखिर आंखों के रस्ते से, वह मनोव्यथा सब निकल पड़ी ।
मुख मौन किन्तु आंखोंसे,केवल अश्रुधारकी लगी झड़ी ।।१३
जब मनका भार हुआ हलका,तब बोली अति क्षीणस्वर में ।
किसलिये पधारेनाथ!आप,मुझ अशुभ उदयिनीके घरमें ।।१४
थे आप आर्यसुत सुखशाली, मैं जब तक घर में नहीं आई ।
मुझ पापिनके आतेही अहा!कैसी घनघोर विपत आई ।।१५।
जीवंधर बोले प्रेम सहित गुणमाले ! व्यर्थ विचार तजो ।
इस मलिन वेशको दूरकरो और अब सोलह शृंगारसजो ।१६
यह पुण्य तुम्हारा ही तो है, जो मैं सकुशल घर आया हूं ।
और संग अनेक अलभ्य वस्तुएं तेरे हित मैं लाया हूं ।।१७।।

अब समझो विपदा दूर हुई,सुख सम्पति आने वाली है ।
गुणमाला जीवन्धर नृप की, रानी कहलाने वाली है ॥१८॥

॥ दोहा ॥

इस प्रकार गुणदाम को, दे अनेक विश्वास ।
जीवन्धर पहुंचे पुनः, खगपुत्री के पास ॥१९॥
उसको भी दे सान्त्वना, हृदय बन्धाई धीर ।
जीवन्धर पहुंचे पुनः, गंधोत्कट के तीर ॥२०॥

× × ×

सब कही कथा विस्तृत अपनी, इस गुप्त अनूपम यात्रा की ।
सम्बन्ध अनेकों होनेकी, औ निज वैभव की मात्रा को ॥२१॥
जननी को प्राप्त किया कैसे, यह भी सब कथा कही उनसे ।
अब राज्य प्राप्तिके बिना, होरही अपनी व्यथा कही उनसे ।२२
बोले अब तात ! अनुज्ञा दो, मैं धरणी तिलका जाऊंगा ।
अपने मातुल गोविंदराज से, सम्मति सर्व मिलाऊंगा। ॥२३॥
मैं पुनः आपकी सेवा में, हे तात ! शीघ्र आजाऊंगा ।
लेकर निज राज्य तात चरणों में, चढ़ा हर्ष अति पाऊंगा ॥२४
कर प्राप्त अनुज्ञा जीवन्धर, पहुंचे धरणी तिलकापुर में ।
गोविंदराज ने भागिनेय को, पा अति हर्ष किया उरमें ॥२५॥
एकांत स्थान में मिलकर सबने, सारी गुप्त मन्त्रणा की ।
गोविंदराज के मन्त्रि वर्ग ने, समुचित सर्व व्यवस्था की ॥२६

। दोहा ॥

तब ही कांष्ठागार का, आया अनुचर एक ।

लेकर काष्ठांगार का एक कपट का लेख।।२७।।

× × × × ×

इस लेख समस्या को भी, सबने विचार विनिमय में डाला।
सचमुच इसने पढ़ने सुनने, वालों को विस्मय में डाला ।।२८
लिक्खा था काष्ठ अंगारे ने, गोविंदराज को विनय सहित।
सत्यंधरका स्वर्गमनवृत्त, जिसको सुनकर सब हुएचकित ।।२९
मदमस्त एक गजराज हुआ, नगरी भर में आतंक दिया।
भूपति ने नागनियंत्रण का, तब मन में दृढ़ संकल्प किया ।।३०
भिड़ गये भूप मद हस्ती से, पर उसको नहिं संभाल पाये।
अपनाबल सर्व निकालदिया,परउसका नहिं निकालपाये ।।३१
मैंने सहायता भी भेजी, पर वह भी काम नहीं आई।
नृपरक्षा के बहु यत्न किये पर कुछ कारी नहिं लग पाई ।।३२
आखिर उस दुष्ट गजाधम ने, वह अनर्थ कर ही तो डाला।
नृपका कृतान्त बन शोक सर्व,नगरी में भर ही तो डाला ।।३३
ग्रह दशा न थी मेरी अच्छी, उस समय मुख्य मन्त्री मैं था।
इस राज्यतंत्र का संचालक, हतभाग्य मुख्य तंत्री मैं था ।।३४
अतएव राज द्रोही पुर में निरअपराध मैं कहलाया।
मेरे विरोधियों ने नृपका, घातक मुझको ही ठहराया ।।३५।।
यह महाकृतघ्नकार्य राजन् ! मैं किसप्रकार करसकता था ? ।
स्वामीवधके कुत्सित पथमें,पद किसप्रकार धरसकता था ? ३६
स्वामी को मैं कितना प्रिय था, स्वामी ही सिर्फ जानते थे।
अतएव इतर सचिवोंसे बढ़,मुझको आत्मीय मानते थे ।।३७।।

इतना मैं दुष्ट अगर होता, तो क्या वे मुझे निकट रखते ? ।
क्यादुष्ट समझ करभी सारा, यहभार मुझी पर वे रखते ।।३८
जब से भूपति हैं स्वर्ग गये, मैं किंकर्तव्य विमूढ़ हुआ ।
कैसे ही कार्य चलता हूँ, शोकासन पर आरूढ़ हुआ ।।३९।।
जो पक्षपात से अंधे हैं, और मुझसे रिपुता रखते हैं ।
वे तो नहिं सत्य समझते हैं, और नहीं समझभी सकतेहैं ।।४०
हैं आप चतुर सच्चे शासक, भूपति के आप धर्मभ्राता ।
अतएव हमारे शुभचिंतक हैं, आपसत्य निर्णयदाता ।।४१।।
इतने वर्षों तक मौन रहे, आये न आप सुधि लेने को ।
अपनी हितैषिता औ शुभचिंतकता का परिचय देनेको ।।४२।।
अतएव आप भी क्या मुझ ही को राजघ दोषी कहते हैं ।
अथवा भगिनीपति के वियोगमें केवल व्याकुल रहते हैं ।।४३
मुझ को तो है विश्वास यही, सच बात आपको ज्ञात हुई ।
फलतः ही तो अप्रिय न कभी, आपकी ओर से बात हुई ।।४४
अब कृपया एक बार आकर, बस मुझको दर्शन दे जावें ।
मुझ दुःखी हृदयकी आप दयाकर, आकर सुधबुध लेजावें ४५
मैं तभी आपकी हितैषिता और बंधुभाव को जानूंगा ।
अन्यथा आप हैं अप्रसन्न, बस यही बात मैं मानूंगा ।।४६।।

।। दोहा ।।

पढ़ कर इस छल पत्र को, सबने किया विचार ।
है षड्यंत्र कुचक्र फिर, रचता काष्ठांगार ।।४७।।
हमें बुलाकर कपट से, अवशि करेगा घात ।

यों करना वह चाहता, अपना पथ अवदात ।।४८।।
अतः यही निश्चय हुआ, यही निमन्त्रण मान ।
सावधान होकर चलें, मिलने का मिष ठान ।।४६।।
राजकुमारी लक्ष्मणा, का भी करना व्याह ।
अतः स्वयंवर भी वहां, कर देंगे सोत्साह ।।५०।।

× × × ×

उस समय अवश्य युद्ध होगा, अन्याय पक्ष वह लेगा ही ।
उसकाफल उसकोसमरांगण,में प्रिय जीवंधर देगाही ।।५१।।
बस यह मंत्रणानियत करके,अनुचरको वापिस बिदा किया ।
दी भेंट और सम्मान किया,अनुचर भी वापस मुदा गया ।।५२

।। दोहा ।।

फिरी राज्य में घोषणा यह सर्वत्र उदार ।
मित्र हमारे हो गये, श्रीयुत काष्ठांगार ।।५३।।
निश्चय वत् सब चल दिये,राजपुरी की ओर ।
काष्ठांगार कृतान्त ज्यों, आया है कर जोर ।।५४।।

× × × × ×

क्रमशः पहुंचे सब राजपुरी, उपवन में डेरा डाल दिया ।
सुनप्रमुदित काष्ठांगारहुआ,उसने मनमें अतिहर्ष किया ।।५५
इनके स्वागत के हेतु अनेकों, भेंटवस्तुयें पहुंचाई ।
ज्यों दुष्प्रवृत्तियां स्वयं न्योतने, समवर्ती सम बन आई ।।५६।।
प्रति प्राभृत भेजी इनने भी उनमें कुछ अधिक मिला करके ।

तुमसेकुछ अधिकसमझती है,योंकहती हाथहिलाकरके ।।५७
तब आया काष्ठांगार स्वयं स्वागत हितनिज परिकर लेकर ।
गोविन्दराज ने आदर सहित, प्रवेशकिया पुर के भीतर ।।५८
यह कपटभाव की महिमा है,सब जग हैं मूर्ख नजर आता ।
दूजा भी कपट जानता है,यहकभी समझ वह नहिं पाता ।।५९
कपटी विलाव जब चुपके से, आता है दुग्ध पान करने ।
वह नहीं समझता स्वामी भी है,खड़ा लट्ठ सिर में धरने ।।६०
बस इसी तरह गोविंदराज को, काष्ठांगार बुला लाया ।
निज नाश हेतु भस्माच्छादित,प्रच्छन्नांगार लिवा लाया ।।६१
समझा उसने यह भस्म करेगी, मार्जित मेरे लांछन को ।
पर नहिं समझा इसमें अंगार,है भस्मकरेगा तन मनको ।।६२

।। दोहा ।।

पहुंचे यों गोविन्द नृप, जीवक युत रिपु धाम ।
छेड़ा कुछ दिन ठहर कर, फिर भविष्यका काम ।।६३।।

× × ×

लक्ष्मणा स्वयंवर ठाठ रचा, उनने नृप की अनुमति लेकर ।
भेजे सब ओर अनुचरों को,शुभपत्र निमंत्रण दे दे कर ।।६४
वाराहत्रय शोभित चंद्रक का, जो बलशाली भेद करे ।
गोविंदराज की सुता लक्ष्मणा,को वह ही नरवीर वरे ।।६५।।
यह करी घोषणा पृथ्वी पर गोविंदराज ने प्रकट सकल ।
सुन,दशों दिशासे आन लगे,वह स्वयंवरार्थी वीरनिकल ।।६६

फिर दिये विशेष निमंत्रण भी अपने संपक्ष भूपालों को ।
लिखदिया गुप्त, सबधार करालावें अपनी करवालों को ।।६७
गोविंदराज के सहकारी, और जीवंधर के श्वसुर सकल ।
खग गरुड़वेग आदिक आये, सब गुप्त रूपसे ले दलबल ।।६८
इस भांति बहुत से भूप, जुट गये राजपुरी के प्रांगण में ।
जिनने सदैवही प्राप्त करीथी,विजय विविध समरांगणमें।।६९
जब निश्चित दिवस स्वयंवर का आया पश्चात् प्रतीक्षण के
होने तब कार्यलगे सबके,तकदीर अरु भाग्य प्रतीक्षणके ।।७०
चन्द्रक के चलते चक्कर को शरसे कर लक्ष्य भेदना है ।
बस इतने मेंही अपनी भी, किस्मत का लक्ष्य छेदना है ।।७१

।। दोहा ।।

बैठे नृपगण सर्व ही चन्द्रक के चहुं ओर ।
अपनी अपनी बाहु का अजमाने सब जोर ।।७२।।

× × × ×

तभी मंचपै मंत्रि गोविंद आया,
स्वयंवरके प्रण को पुनः यों सुनाया ।
चलत् चक्र चंद्रका भेदन करेंगे,
वही वीर लक्ष्मणा को वरेंगे ।।७३।।
स्वयंवर का अब कार्य प्रारंभ होता,
वह जग जावे सत्वर जो गफलत में सोता ।।७४।।
जिसे लक्ष्मणा प्राप्त करने की इच्छा,
वह देवे यहां अपने बलकी परीक्षा ।

किसे प्राप्त यह नंदिनी आज होगी,
किसे अपने वीरत्व की लाज होगी ॥७५॥
यही आज हमको यहां देखना है,
परीक्षक सभी का यह चंद्रक बना है।
हुई शीघ्र प्रारंभ सबकी परीक्षा,
सभी की भुजाओं की सच्ची समीक्षा ॥७६॥
मगध नाथ आये प्रथम मंच ऊपर,
हुई व्यर्थ शक्ति गिरी दृष्टि भूपर।
कलिंगेश आये पुनः कर चलाते,
गये लौटकर दुःखसे सिर हिलाते ॥७७॥
पधारे जो विनतेश बल आजमाने,
गये होके निर्बल दुःखी क्यों न जाने।
प्रभू पोदना के ज्यों आगे पधारे,
फिरे अंग लाये हो जैसे उधारे ॥७८॥
अयोध्यापती ने संभाला शरासन,
गया छूट पांवों के नीचे धरासन।
अवंती के स्वामी ने कार्मुक संभाला,
न जाने वदन हो गया कैसे काला ॥
जब अगणित नृपों ने बल आजमाया,
तब हुंकारता काष्ठ अंगार आया ॥७९॥
महादर्प से सर्प फुंकार करता,
चला यह भी त्यों घोर हुंकार करता।

विकट यंत्र के नीचे ज्यों पांव रक्खा,
न जाने किधर से लगा भारी धक्का ॥८०॥
गिरा होश खोकर अधोवक्त्र भूपर,
लगा कांपने होके प्रस्वेद थर थर।
विकट हास्य गूंजा सभी ओर भारी,
लगे तालियां पीटने नर व नारी ॥८१॥

॥ दोहा ॥

इस प्रकार लज्जित हुआ, अतिशय काष्ठांगार।
तब निज आसन से उठे, जीवंधर सुकुमार ॥ ८२ ॥

× × × ×

दृढ़ता से जाकर खड़े हुए, मुख में मृदु मंद हास्य भरकर।
श्रीप्रभुको प्रथम प्रणामकिया और स्मरणकिये मनमें गुरुवर
फिर उठाचाप करमें शरको उसपर विधिसहित प्रयुक्तकिया।
संधान लक्ष्यका लक्षितकर, मार्गणको कार्मुक मुक्तकिया ॥८४
अति विकट शब्द करते शरने, चंद्रक पर चोट लगा ही दी।
उन किंचिज्ञों की सुप्त चेतना, उसने शीघ्र जगा ही दी।८५।
करतल ध्वनि नभ में गूंज उठी, जय जय के नारे बोल उठे।
धिकधिक धन धनका शब्दलिये, मिरदंग नगारे बोलउठे ॥८६
गोविंदराज निःशंक हुए, दंभीजन दंभविहीन हुए।
गुणग्राही नृप मन मुदित हुए, मानीजनके मुख दीनहुए ॥८७
आनंद पूर प्लावित होकर, गोविंद राज तब हुए खड़े।
सब नृप समाज के सम्मुख उनने, रहस्य खोले बड़ेबड़े ॥८८॥

हे भूप वर्ग ! मैं आज आपको, छिपा भेद वतलाता हूं ।
इस वाण विजेताका परिचय,सवको संक्षिप्त सुनाता हूं ॥८६।
इस राजपुरी के नाथ हमारे वहनोई सत्यंधर थे ।
थे सज्जन जनके प्राणनाथ दुष्टों के काल भयंकर थे ॥६०॥
यह पुत्र उन्हीं का श्रीशाली मम भागिनेय जीवंधर है ।
है वाहुवली सा वाहुवली, कालों का काल भयंकर है ॥६१॥
वसुधापतियों ने जीवक को, कार्मुक पटुता से जान लिया ।
शारीरिक चिह्नों को लखकर, कइयों ने उसे पिछान लिया ॥

॥ दोहा ॥

सत्यंधर के सूनु को,लख जीवित वपुमान् ।
सज्जन परिजन वंधु सव, हुए प्रसन्न महान् ॥६३॥
अशनिपात से भुजग ज्यों, होता है भयभीत ।
त्योंही काष्ठांगार भी, हुआ भीत भय शीत ॥६४॥

× × × ×

चिंताकुल हो वह दुष्ट वुद्धि, अपने मनको नोचने लगा ।
लख कालरूप अपने रिपु को,वह मनमें यों सोचने लगा ॥६५
यदि सचमुच हो यह धृष्ट युवा, है पुत्र उसी सत्यंधर का ।
तो आई मृत्यु हमारी है और नाश हमारे घर भर का ॥६६
मैं देख चुका हूं कई दफा, इसके वांके वल विक्रम को ।
है व्यर्थ अनेकों वार किया इसने योद्धाओं के श्रम को ॥६७॥
अफसोस मुझे इस वात का है, यह मर कर कैसे उठ आया ।
उस मथन दुष्ट ने इसे मारने में कैसा धोखा खाया ॥६८॥

क्या सारी सृष्टि स्वार्थमय है, कोई भी यहा नहीं अपना ।
मित्रता बंधुता सखा भाव क्या, सभी यहाँ कोरा सपना ।।९९
देखो क्या कुमति उठी मुझको, इसके मामा को बुलवाया ।
उस शांत सलिल के कर्दम को,हा डंडादेकर हिलवाया ।।१००
यह आत्मघात के हेतु छुरी मैंने अपने गल पर मारी ।
है सत्य, पाप से आ मिलती, है अप्रिय सामग्री सारी ।।१०१
अब क्रोधित हुआ शत्रु न जाने क्या अनर्थ कर डालेगा ।
गोविंदराज का बल इस ज्वालामें फिर ईंधन डालेगा ।।१०२
मुझ से धोखा है किया बड़ा गोविंदराज नालायक ने ।
यह ठाठ स्वयंवर रचा कपट से इसीलिये दुखदायकने ।।१०३
पर खैर देखलेना बच्चे, मैं छुई मुई का पेड़ नहीं ।
जिसमें तू समा सके सुखसे, ऐसी तो यहां तरेड़ नहीं ।।१०४
उस छोरे को भी देखूंगा, जो आया है तुझको लेकर ।
यह राज्य बड़ा महंगा मिलता, है जानेगा वह जीवंधर ।।१०५

।। दोहा ।।

इस प्रकार होकर कुपित, मनमें काष्ठांगार ।
उठ आया आस्थान से, करने कुटिल विचार ।।१०६।।

× × × ×

जो दुष्टबुद्धि उस ही से थे, या थे जो चापलूस नामी ।
ऐसे नृप और मंत्रियों से वह,करने लगा सलाह कामी ।।१०७
जीवंधर इधर स्वयंवर में थे, देख रहे इनकी लीला ।

होताथा कभीउदास और वह, दुष्ट कभी नीलापीला ।।१०८
जब चला गया वह मंडप से, ये ताड़ गये उसके मन को ।
कर दिये रवाना गुप्त दूत, जानने मंत्रणायें उनकी ।।१०९।।
फिर इधर आपने भूपालों को, अपना सब वृत्तान्त कहा ।
इस शठकी कुटिलकरणियोंसे,जोजोभी भारीकष्ट सहा ।।११०
शठ को शठता का प्रतिफल दे,निश्चय दण्डित करना होगा ।
अघसे परिपूर्ण हुआहै घट,उसको खण्डितकरना होगा ।।१११
कर परामर्श गोविंदराज, जीवन्धर युत सन्नद्ध हुए ।
नृपघाती वंचकके विनाश-हित भूपति सब कटिबद्ध हुए ११२

॥ दोहा ॥

उधर मन्त्रणा कर रहा, पापी काष्ठांगार ।
जीवंधर पर सैन्य-संग, करना घातक वार ।।११३।।

× × ×

जीवित न जाने पाय अबकी, दाव खाली जाय ना ।
छल से मिला यह राज्य मेरा,फिर कहीं छिन जाय ना ।।११४
छल-कपट से घात करदो, यह मेरा आदेश है ।
काल छाया शीश पर, अब सोचना क्या शेष है ।।११५।।

× × ×

चढ़ा सैन्य ले दुष्ट, कुटिलता उर में धारे ।
नीति कुशल जीवंधर भी थे सजग सम्हारे ।।११६।।

छिड़ा भयंकर युद्ध, रक्त से धरा नहाई ।
बने काल के ग्रास, हजारों पड़े दिखाई ॥११७॥

॥ दोहा ॥

सम्मुख काष्ठांगार के, जीवंधर वर-वीर ।
हो क्रोधित बोले गिरा, घन गर्जन गम्भीर ॥११८॥

× × × ×

भर गया पाप का घट तेरा, तू देश-द्रोही घातक है ।
जन जन है पीड़ित त्रासों से,तू पातकका भी पातक है ॥११९
जग निन्दनीय, तू कुलकलंक, नृपघाती है, ममघाती है ।
ले संभल-संभल अबमृत्यु तुझे,निजग्रास बनानेआती है ॥१२०

॥ दोहा ॥

दिया निमंत्रण कालको, तूने रच कर जाल ।
किन्तु कुचक्र न चल सका, उलटी पड़ गई चाल ॥१२१
लख, लख ये निर्दोष जन, धरणि पड़े ज्यों रंक ।
तू भी यमपुर जायेगा, अघ- अभिशप्त कलंक ॥१२२
यूं कह धनु सन्धान शर, लिया कर्ण तक खींच ।
पापी काष्ठांगार का,गिरा मही पर शीश ॥१२३॥

× × × × ×

है मृत्यु जन्म के साथ बंधी, जो आता है वो जाता है ।
पर जीवन धन्य उसीका है,जो जन-हितकुछ करपाता है ॥१२४

मरना भी सफल उसी का है, चिरकाल अमर यश जग-गाये
अपयशका सिरपर लेकलंक,धिक्धिक् ऐसाजीवन पाये ॥१२५
होगया काल-कवलित अरि जब,तत्काल युद्धकर दिया बन्द ।
दे दिया दयामय अभयदान,जो शेष बचाथा शत्रुवृन्द ॥१२६
अन्यायी शासक से शोषित,जन पदका जनजन हो विभोर ।
जीवंधरकी जय नादोंका, गुंजित नभतक मचगया शोर ॥१२७
अत्याचारों से त्राण पाय, जन मानस पुलकित हो आया ।
जनताको नवजीवन देने,जीवक जीवन ज्यों बन आया ॥१२८
नूतन शासन का शासक का, सत्कार सदा से होता है ।
उत्पीड़ित मानस,सुखदायक,शासनकी आशा जोहता है ॥१२९

॥ दोहा ॥

राज पुरी के सब सजे, द्वार भवन अरु पंथ ।
मिलन प्रतीक्षा रत सजे, नवल वधू निज कंत ॥१३०॥
जीवंधर ने राजसी, धरा विभूषित वेश ।
शुभ मुहूर्त्त शुभ लग्न में, पुर में किया प्रवेश ॥१३१।

× × × × ×

मुख्य द्वार पर बजी प्रथम मंगल सहनाई ।
अश्व-सैन्य ले विजय पताका फिर बढ़ आई ॥१३२॥
फिर मदमत्त गयंद चढ़े वीरों की टोली ।
हर्षित हो जन पुष्प वृष्टि करते भर झोली ॥ १३३
घिर आई रथ सैन्य, सजी सुर-सेना जैसी ।
पद- सेना निज शौर्य, प्रदर्शन करती कैसी ॥१३४॥

हित चिन्तक सब मित्र और परिजन सज आये ।
मातुल गोविंद राज, स्वर्ण मुद्रा बरसाये ।।१३५।।

× × × × ×

देदीप्यमान रथ में शोभित, जीवक की आई असवारी ।
थे संग अंग-रक्षक उनके,देवोपम शोभा थी न्यारी ।।१३६।।
हय-पद से ध्वनित मार्गपर जब,अभिवादन पुरजन करते थे ।
मुस्काकर नृपभी जनताका हंसहंस अभिनन्दन करतेथे ।।१३७
जय घोष निनादित चहुं दिश में,पथ पुष्पोंसे आच्छादित थे ।
नृप के दर्शनहित नरनारी,आभूषण-वसन सुसज्जितथे ।।१३८
जन पथ पर बन्दनवार सजी, घरघर में मंगल थाल सजे ।
लघु वीथि-वीथिकाओं में भी,कोकिल कण्ठोंसे गीत बजे ।।१३९

।। दोहा ।।

राज भवन पहुंचे नृपति, हुआ मंगलाचार ।
स्वागत सचिवों ने किया, अति विनम्रता धार ।।१४०।।
प्रथम देव दर्शन किये, पूजन स्तवन अपार ।
भक्ति भाव युत भूप ने, जपा मंत्र नवकार ।।१४१।।

× × ×

महामंत्र की महिमा अगम, इहलोक में परलोक में ।
जो जपे वह त्राण पावे, व्याधि, रोग रु शोक में ।।१४२।।
पाप नाशक ताप नाशक, मन्त्र जप भवि शिव गये ।
नर ही नहीं, तिर्यञ्च खग भी,देह तज सुरपुर गये ।।१४३।।

॥ दोहा ॥

मंगलमय मंगल करन, महामंत्र है सार ।
नशैं अमंगल काष्ठ ज्यों, डारत अनल मंझार ॥१४४॥

× × ×

स्मरण किया यक्षेन्द्र को जीवक ने मन–मीत ।
सज्जन जन बिसरत नहीं, क्षण भर की पा प्रीत ॥१४५॥

आगये त्वरित तहँ यक्षराज, कर अभिवादन प्रमुदित मनसे ।
शुभवेला पर करते आये,वह पुष्पवृष्टि नभ प्रांगणसे ॥१४६
क्षण भर में सभा भवन रचकर, सिंहासन रत्न जटित लाया ।
वस्त्राभरणोंसे शोभित कर नृप को मंडप में लेआया ॥१४७
सुरसरिता के पावन जल से,अभिमंत्रित कनक कलश लाया ।
अभिषिक्त किया नृपको सुरने,करगहि आसनपर बैठाया ।१४८
सब सिद्धों को कर नमस्कार, नृप सिंहासन आसीन हुए ।
प्रतिकूल रहे जो शासकगण,वे शीश नवा आधीन हुए ॥१४६
अरि मित्र तथा पुरजन-परिजनका अभिनन्दन स्वीकारकिया ।
रण-पीड़ित प्रजाजनोंका फिरसबभांति विविधउपकार किया ॥
सामन्तगणों ने यथा योग्य,नृप को निज भेंट करी अरपित ।
अरु प्रजाजनोंने श्रद्धायुत,की न्योछावरहोकर प्रमुदित ॥१५१
औ दीन हीन पीड़ित जन को,हो मुक्त-हस्त बहु किये दान ।
अरिपक्ष तने जो अनुयायी,भयमुक्त किये दे अभयदान ॥१५२

॥ दोहा ॥

करी घोषणा प्रथम जन-आशा के अनुकूल ।
द्वादश बरसों तक नहीं, कुछ कर होय वसूल ॥१५३॥

× × ×

होगी अधिकारों की रक्षा, जनगण का शोषण नहीं होगा ।
सब नगरवासी भयमुक्त सुखी, ऐसा मेरा शासन होगा ॥१५४
दोषी दण्डित होंगे अवश्य, सज्जन जन सम्मानित होंगे ।
अपराधरहित जन जीवनकी,युगयुग तक सबउपमा देंगे ॥१५५
गोविन्द राज ने हो पुलकित, गोदी में लेकर भागिनेय ।
हे नरनाहर ! हो नरपुंगव,कुलदीपक यूं आशीष देय ॥१५६।
भगिनी मम वीर प्रसूता अब, अरु बनी वीर पत्नी तनया ।
वे हुए मनोरथ पूर्ण सकल,जो लिये हुए उरमें विजया ।१५७।
लो,नभ से सत्यन्धर नृप भी,हो,पुलकित लखकर निज सुतको ।
कुल तारक सुत,होवे यदि तो,फिर हर्षित क्यों न करे पितुको ।
सुरमंजरि गन्धर्व दत्तिका, विमला गुण माला हो विभोर ।
नर नायक रण विजयी पतिके,स्वागत करनेको एक ओर।१५९
सजकर सोलह श्रृंगार किये, निज-निज करमें ले विजयमाल ।
मादक मुद्रा से थिरक थिरक, कर लिये कलश युत कनकथाल।
अवगुण्ठन डाल नवोढ़ा सी, चंचल चितवन नयनन निहार ।
कररही प्रतीक्षा स्वामीकी,क्षण क्षण बाहर लख बारबार१६१

संवाद सभा के परिचारक, जब आ आ उन्हें बताते थे ।
मनकी बीणाके तार स्वयं, हर्षित हो बज बज जाते थे ।१६२

॥ दोहा ॥

सारी नगरी हो रही, मानो आज निहाल ।
उत्सव अति आनन्दयुत, विरचे विविध विशाल ॥१६३॥

× × ×

थी घर घर में ऐसी सजी दीप माला ।
जले दीप घृत के, सजी रंगशाला ॥ १६४ ॥
कहीं बीन करताल बाजे नगाड़े ।
कहीं कौतुकों के जमे थे अखाड़े ॥ १६५ ॥
कहीं नट कलाबाजियां खा रहे थे ।
कहीं भिक्षु भोजन, वसन पा रहे थे ॥ १६६ ॥
कहीं नृत्य करती थीं नृत्यांगनायें ।
कहीं घुंघरु-झनकार, ढोलक बजायें ॥ १६७ ॥
बहुमूल्य वस्त्राभरण पहन आईं ।
औ कोकिल से स्वर में सुनाये बधाई ॥ १६८ ॥
विदूषक धरे रूप सबको हँसाये ।
सभी उल्लसित होय उत्सव मनायें ॥ १६९ ॥

॥ दोहा ॥

महिमा भारी पुण्य की, सत कर्मों के लेख ।
इस प्रकार नृप का हुआ, सुखद राज्य अभिषेक ॥१७०।

× × ×

अति राजकीय सम्मान सहित, घिर निज जननीको बुलवाया

जा नगर द्वार पर जीवन्धर, विजया को महलों में लाया१७१
उच्चासन पर आसीन करी, जननी के चरण कमल धोये।
निज शीश नवा गद्गद स्वर में, पद पकड़ बालवत् नृप रोये।
मा ! क्षमा करो, मम हेतु सहे, क्या कष्ट नहीं तुमने अबतक।
सुतके रहते मा रहे त्रसित,क्या बड़ा और इससे पातक।१७३
वह पुत्र नहीं, अरिवत्, जननी-सेवा से चित्त चुराये जो।
वह कुल-कलंक कहलाता है, माता का हृदय दुखाये जो।१७४
ले जन्म कुक्षि से मां तेरी, गोदी में खेल नहीं पाया।
तव स्नेहामृत पी सका नहीं,पय-पान न तेरा कर पाया।१७५
हत भागी हूं मैं अपराधी, निश्चय जननी तेरा भारी।
किस तरह करूं मैं प्रायश्चित्त,बतला तूही मम महतारी।१७६
आदेश करो जननी मुझको, यह शासन अत तेरे हित है।
सर्वोपरि आज्ञा तव होगी, सिंहासन तुझको अर्पित है।।१७७

विनय स्नेह लख पुत्र का माता भई निहाल।
गद्गद हो बोली उठो,धन्य धन्य मम लाल।।१७८।।

।। दोहा ।।

लाज जनक की रख लई, हे कुल श्रेष्ठ सपूत।
वीर जननि मैं अब भई, तुमसा सूत–प्रसूत।।१७९।।

× × ×

कौरव कुल नाहर का शावक, तू बाहुबली नर नाहर है।
अरि-दल भंजक तू वीर तनय, जन वत्सल है विद्याधर है।।
लख तुझे लाल सब कष्ट-बिसर, सब व्यथा हृदय से दूर हुई।
सन्ताप स्वप्न से अब लगते, बाधायें चकनाचूर हुई।।१८१।।

आसन पर पितु के बैठ पुत्र, शासन कर होकर निष्कण्टक ।
हो पथ प्रशस्त,जीवन यशमय,नभ में रवि चन्द्र रहे जबतक ।।

दोहा—यों सुत को आशीष दे, लीनो हिये लगाय ।
ममता युत मुख चूमकर, कर वर वरद फिराय ।।१८३।।

हर्षातिरेक से नयनों में, माता के आंसू भर आये ।
टपटप निर्झर सी धार बही,उद्‌गार नेह के उर आये ।१८४।
ममता क्या है कैसा स्वरूप, यह मां ही बतला सकती है ।
जिसने सुतकिया प्रसूत नहीं,अनुभूति न जतला सकती है।१८५
चिरकाल प्रतीक्षित जननी के, वे पूर्ण मनोरथ सकल हुए ।
लख स्नेह मिलन सुत-जननी का, सब ही के चक्षु सजल हुए ।।

× × ×

जननी का पा दिव्य नेह, निज शीश नमाया ।
श्रद्धायुत कर थाम, सुखासन पर बैठाया ।।१८७।।
पालन कर्ता जनक और जननी बुलवाये ।
परम पूज्य पद देय, भक्तियुत नमन कराये ।।१८८।।

दोहा—अंतः पुर नृप तब गये, मिलन हेतु वर-नार ।
पंथ निहारत प्रेम से, दरश—करन भरतार ।।१८९।।

× × ×

सुरमंजरि, गन्धर्व रत्तिका लख प्रियतम को धाई ।
गुणमाला भी नेह—तृषित नयनों को आई ।।१९०।।
विमला हो उन्मादित सी मृदु मृदु मुस्काई ।
लख स्वामी को अति विनोद युत बात सुनाई ।।१९१।।

सुना देव ! अब आप राज्य लक्ष्मी वर लाये।
हों न जाँय आसक्त, हमें अब भूल न जायें ।।१६२।।
अर्धांगिनी हम देव !, आपकी हम हैं नारी।
इसी हेतु तव स्नेह–कोष की हैं अधिकारी ।।१६३।।
जीवन में हे नाथ, साथ में नर के नारी।
लता विटप से होय, वेष्टित शोभित भारी ।।१६४।।
अति रंजित अनुराग नैन कर दरश तुम्हारे।
परस सरस–उर–उमंग समर्पित प्राण हमारे ।।१६५।।
हे नर नायक ! स्नेह–दीप की है हम बाती।
ज्योति प्रेम की रहे निरन्तर हृदय जगाती ।।१६६।।
कर बहु विधि आलाप, भूप रंगमहल पधारे।
स्नेह दीप से आलोकित उर के अंधियारे ।।१६७।।
सबको किया कृतार्थ, सभी अति ही हरषाई।
पा स्मर सा भरतार, राज–महिषी कहलाई ।।१६८।।

दोहा—फिर जीवन्धर ने दिये, सभी जगह सन्देश।
पापी काष्ठांगार से, मुक्त हुआ अब देश ।।१६९।।

× × ×

'चन्द्राभा' 'क्षेमपुरी' 'हेमाभा' नगरी अनुचर पैठाये।
निज वधुओं को घर लाने को,हय,गय,रथ संग में भिजवाये ।।
निज पितु गृह में पा समाचार, आनन्दित सब ही नारि हुई।
युग २ की मानो विरह व्याधि, क्षण भर में सब दूर हुई ।।

जो स्वप्न संजोये "पद्मा" ने, पूरण अब होने को आये ।
अरु क्षेमश्री के हृदय-कमल विकसित हो मानो मुस्काये ।२०२
मृगनयनी वधू कनकमाला, प्रिय दर्शन की ले अभिलाषा ।
पितुगृह से पति गृह जाने की, आई शुभ वेला ले आशा ।२०३
सबके पितुमात हुए प्रमुदित, तंनयाने रानी पद पाया ।
पूरब भवके शुभ करमों से, जीवंधर स्वामी वर पाया।२०४

।। दोहा ।।

विदा करी निज निज सुता, दे अनुपम उपहार ।
यों पतिगृह में आगई, वे शशि-वदनी नार ।।२०५।।

× × ×

नगर द्वार पर हुआ सभी का स्वागत भारी ।
धूमधाम से राज भवन तक सजी सवारी ।।२०६
प्रथम सास के चरण परस शुभ आशिष पाई ।
और महल में मुक्त हस्त हो बंटी बधाई ।।२०७।।
बोली जननी, सभी स्नेह प्रियतम का पाओ ।
रहो सभी सानन्द, वंश का मान बढ़ाओ ।।२०८।।
प्रियतम के पा दरस, धन्य निज निज को माना ।
सरस परस पा स्नेह, विरह दुख बिसर पुराना ।।२०९

× × ×

फिर लक्ष्मणा को व्याह हेतु, गोविन्द राज ने बुलवाया ।
अरु राजपुरीमें अतिविशाल, मण्डप विवाह हित बनवाया।२१०
"पुरधरणि तिलक"से सभी प्रमुख,पुरजन परिजनभी मिलआये
तब सभी मित्र-भूपतिगणको,शुभ प्रणय निमंत्रण भिजवाये ।

मंगल मुहूर्त्त शुभ वेला में लक्ष्मणा का पाणिग्रहण हुआ ।
निज भागिनेय को तनुजा दे, गोविन्दराज भी धन्य हुआ ।२१२
आभूषण, वसन, अनेकों ही, हय-गय आदिक उपहार दिये ।
उन्मुक्त हृदय से हो हर्षित, रतनादिक भण्डार दिये ।।२१३।

।। दोहा ।।

लक्ष्मणा के संग में, जीवन्धर गुणवान ।
कर विवाह शोभित हुए, सरिता सिन्धु समान ।।२१४।
अहो पुण्य महिमा प्रबल, कही न मुख से जाय ।
प्रेतभूमि में ले जनम, फिर भूपति बन जाय ।।२१५।।
पापी करके छल कपट, भयो शासनारूढ़ ।
वंचक काष्ठांगार अब, यमपुर पहुंच्यो मूढ़ ।।२१६।।

× × +

है सुख दुख प्राणी जो पाता, यह सब कर्मों की माया है ।
जिसने जैसा था कर्म किया, उसने वैसा फल पाया है ।।२१७
कर्मों के फल से राजपुत्र का प्रेत भूमि में जन्म हुआ ।
फिर राजा का पद पाकर के अतिशय समृद्धि में लीन हुआ ।
भावी न कभी रुकती रोके, निश्चित होकर ही रहती है ।
करनी मानव की भली बुरी, अपना फल देकर रहती है ।२१९

।। दोहा ।।

सुख में बिसरै जो धरम, दुःख में करे विलाप ।
अज्ञानी समझे नहीं, कहा पुण्य ? क्या पाप ? ।।२२०।।
व्यथा रहित नर वह रहे, सुख दुःख एक समान ।
करे निर्जरा कर्म की, हो विरक्त विद्वान ।।२२१।।

इति श्री छन्दोबद्ध जीवन्धर चरित्र में लक्ष्मणा लाभ नाम का दसवां लम्ब पूर्ण हुआ ।

ग्यारहवां अध्याय

॥ दोहा ॥

जिन सुमिरण संकट नसें, होंहि अमंगल क्षार ।
तिन चरणनि को परस नित, प्रणमूं बारम्बार ॥१॥

कर अरि भंजन, राज्यपद, पा गुणमाला नार ।
सुख-युत शासन रत भये, जीवंधर सुकुमार ॥२॥

× × × ×

सुख-दुख प्रजा का निज समझकर, राज्य का शासन करें ।
जैसे जनक, हित कामना युत, होय सुत पालन करें ॥३॥

भावनाएँ भूप की, यदि हों दयामय, न्याय-युत ।
फिर हो भला कैसे प्रजाजन, राज्य में कर्त्तव्यच्युत ॥४॥

तजकर प्रमाद, सतर्क होकर, नियत अधिकारी किये ।
सबको सुलभ हो न्याय, फिर ऐसे नियम जारी किये ॥५॥

गुप्तचर थे अति कुशल, जो त्वरित देते सूचना ।
अपराध, भ्रष्टाचार, अरु अन्याय पहले रोकना ॥६॥

थी मित्रता सबही पड़ोसी–शासकों से भूप की ।
तेजस्विता अतिशय प्रकाशित, ग्रीष्म ऋतु की धूपसी ॥७॥

रक्षार्थ-तत्पर देशको था, जन सभी सम्पन्न थे ।
दीन थे न अधीन धनके, कर्मवीर प्रसन्न थे ॥८॥
बलवान निर्बल को कभी, तब थे सता पाते नहीं ।
धन-हीन, धनपति द्वार पर, थे हाथ फैलाते नहीं ॥६॥
था अतुल उत्पादन बढा, व्यापार देश-विदेश में ।
अरु देखता, दुःख सुख प्रजाके, भूप नाना भेष में ॥१०॥
कर्त्तव्य-रत था, नीति पालक, संगठित था शक्ति में ।
धर्म-रत रहता सदा, अनुरक्त था जिन-भक्तिमें ॥११॥

॥ दोहा ॥

परम प्रतापी बहु गुणी, पा नृप पालन हार ।
पुरजन शत-शत कंठसे, थी गुंजित जयकार ॥१२॥
ज्यों विकसित दल-कमल को, परस सकत नहीं नीर ।
त्यों अनुरक्तिसे रहित, राज करत गुण धीर ॥१३॥
धर्म, अर्थ, अरु कामका, कर आचरण पुनीत ।
सुख भोगत, निज पुण्य-फल, जीवक इन्द्रिय-जीत ॥१४

× × ×

थी राज-रानियाँ अति प्रसन्न, आठोंही आठों याम सदा ।
पाकर अनंग सम हृद-वल्लभ,रतिसी प्रमुदित बनकर प्रमदा ।
अतुलित अनुराग सभी पाकर, अपना सौभाग्य सराहती थीं ।

रतिपतिसे रति-हित अनुरंजित,नाना शृंगार सजाती थी ।१६
था नहीं परस्पर खिन्न भाव, अरु नहीं सौतिया-डाह रही ।
सबकी सीमित थी मर्यादा, मर्यादित मनकी चाह रही ।।१७
अपरिमित स्नेह-सुधापाई, पाया पति पौरुष बलशाली ।
उद्यान कभी,कर वन-बिहार,करतीविनोद हो मतवाली ।१८।

॥ दोहा ॥

स्नेह-सलिल पावन बहत कर अति केलि विनोद ।
रस रंजित सुखकर समय, बीतत करत प्रमोद ।।१९।।

काल पाय जननी भई, जनमें सुत सुकुमार ।
उदित भानु-सी थी प्रभा, जनक-रूप उनिहार ।।२०।।

अष्ट राज-महिषी जने, अष्ट तनय गुणवान ।
अष्ट सिद्धि नव निधि लसे, भोगत भोग महान ।।२१।।

कहा अनेक भी सुत करें, होय मही ल-भार ।
हो सपूत यदि एक ही, देहि सकल कुल तार ।।२२।।

पुरजन-परिजन मित्र जन, पुत्र-पौत्र, कुल नार ।
लखि विजया मनमें मुदित, सकल सुखी परिवार ।।२३।।

एक दिवस निज पौत्र को, बैठी गोद खिलाय ।
खेलत हठ गहि बाल यूं, शशि मोहि देहु मंगाय ।।२४।।

शशि अलभ्य पावै नहीं, रहे गगन में दूर ।
रोय पसरि धरणी परयो, शिशु लिपटी तन धूर ।।२५।

देखि विचार करे विजया यदि,जो नर इच्छित वस्तु न पावे ।
तो उर त्रास लिए भटकै अरु,हो अति व्याकुल नाचनचावै । २६
जो कहुं होय कदाचित् पूरण, मान हिये सुख, दुःख भुलावै ।
पा के काच कहूँ नर मूरख,औरन को मणि कह दिखलावै ।।
हाय ! वृथा गयो काल इतो, दुःखमें, सुखमें, कहुं चैनन पायो ।
पायो जो पूत,गंवायो पतिअरु,पूत भी पायके,पायो न पायो।२८
पायो पुनः जो सपूत तो लायके,राजके मोह में मोहि फंसायो ।
पुत्र कलत्र से मान पा मानिनि,मानकी रज्जुसेज्ञान बधायो ।।
कर्म उदय सब पाये शुभाशुभ, दुःखही दुःख मिले वहु तेरे ।
होय विषय-वश भोगन में, अनुरक्त भई, करि भोग घनेरे ३०
तोहू न तुष्ट भई लिप्सा, दिये देह के नेह में मोह ने घेरे ।
ना तन, ना धन,राज न, साज न,पुत्र व पौत्र कलत्र न मेरे।।३१
राग विषै मद-अन्ध भई, अरु अन्तर में कहुं झांक न पाई ।
मोह की नींद में, होय अचेत,सचेत नहीं निज को कर पाई ।।
आतम के हित ज्ञानकी ज्योति, कभी उरमांहि नहीं प्रगटाई ।
अन्त समय नहीं कोउ बचावत, एक रतनत्रय धर्म सहाई ।।
काहु के मात-पिता जगमें,अरु काहु के पुत्र औ कन्त कहावे ।
आवत साथ न जावत साथमें,जीव अकेलोहि आवे औ जावे ३४
पुण्यरु पाप भी बन्धन कारक, कर्मशुभाशुभ ये भुगतावें ।
ज्ञानका दीपले, शोधेजो अन्तर तोनिज आनंद आतम पावें ।।

मोह महा दुःख कार, कहूँ न सुख संसार में।
जो चाहो सुख-सार, तजि सब ममता वन बसो ॥३६॥

× × × ×

यूं कर चिन्तन जीवक जननी,सुत बुला निकट,निज बात कही।
पा तुझसा, जननी भक्त तनय, उर नहीं चाह कुछ शेष रही
सुख दुःख इस जगके देख लिये, सब सारहीन मैंने पाये।
करलूं कल्याण आतमा का, ये भाव हृदय मेरे आये ॥३८॥

॥ दोहा ॥

सुन माता के ये वचन, नृप बोले शिर नाय।
धर्म ध्यान के हेतु दूँ, मन्दिर एक बनाय ॥३६॥
बोली विजया हो नहीं, घर में आतम बोध।
हित-अनहित ज्यों ना लखै, तजै न तब तक क्रोध ॥४०॥
जिन दीक्षा धारण करूँ, ऐसा अटल विचार।
आत्म-साधना हेतु अब, दो अनुमति सुकुमार ॥४१॥

× × × ×

बोले नरपति, मां! बिछड़गया, जनमत ही तूने दुःख पाये।
युग-युग के बाद मिली मुझको, सेवा करने के दिन आये ।४२

क्यों वंचित अब मुझको जननी! कर रहीं स्नेह की छायासे ।
हूँ तृषित नेह का करने दो, सेवा कुछ तो इस काया से ।।४३

रह घर में करो धर्म साधन, बाधा नहीं कुछ भी लाऊँगा ।
तेरी पुनीत चर्या से मां ! मैं भी पुनीत हो पाऊंगा ।।४४।।

बेटा ! कीचड़ में फंसा हुआ, क्या तन निरमल रह सकता है ?
काजल की कुटिया में जाकर, क्या वसन धवल रह सकता है ।।

व्यापार कोयले का होतो, कर काले किसके नहीं होते ?
घर में रह कर बस इसी तरह, हम मोह से मुक्त नहीं होते ।।

यूँ देख विरक्ति माता की, नयनों में नीर छलक आया ।
थर-थरा गया स्वर गिरा मौन, उर अनुरंजित हो भर आया ।।

बोले जीवंधर हे जननी ! आदेश न तेरा हम टालें ।
तेरे पुनीत पथ में माता, हम बाधा किंचित् नहीं डालें ।।४८

दो आशिषंवरद करूँ निशदिन, अनुशरण सदा सज्जन जनका ।
दुष्कर्म मुझे मा ! छू न सके, आचरण करूँ जिन शासन का ।।

रह सुखी पुत्र ! तू स्वस्थ सदा, दे आशिष विजया हरषाईं ।
सुनकर संवाद सभी वधुएँ, अन्तःपुर से दौड़ी आईं ।।५०।।

पद परस किया अनुरोध, हमें, यूँ माता छोड़ नहीं जाओ ।
अपने इस नेहाश्रय से मा ! आश्रय-विहीन मत कर जाओ ।।

समझाया सबको यथा योग्य, निज मिष्ट-गिरा से कल्याणी ।
आ तभी सुनन्दा यूँ बोली, मैं भी तो संग में हूं राणी ।।५२।।

॥ दोहा ॥

यह अलभ्य अवसर नहीं, मिलता वारम्वार ।
धन्य-धन्य जो त्याग का, कीना उच्च विचार ॥५३॥
हो प्रेरित तव भाव से, मम उर भयो विराग ।
साथ करें तप साधना, जायें भव-दुःख भाग ॥५४॥

× × ×

सारे नगर मँझार, पाय सूचना नगर-जन ।
राज भवन के द्वार, पुरजन आये मिल सकल ॥५५॥
उत्तम कर्यो विचार, धन्य-धन्य जन उच्चरें ।
तज्यो राज घरबार, ठुकरा कर वैभव अतुल ॥५६॥
जिन-मारग सुखकार, मानव-भव करदे सफल ।
होय भवो दधि पार, चढि बिराग नौका भविक ॥५७॥

× × ×

जीवंधर ने चरण परस रज शीश चढाई ।
हो रथ में असवार, मात-द्वय वन में आई ॥५८॥
तहां आर्यिका श्रेष्ठ, नाम पद्मा तप धारी ।
गहि पाणि द्वय जोरि, जैन-दीक्षा सुखकारी ॥५९॥
पा श्रमणी पद भई, पूज्य, जग माथ झुकाया ।
लख जननी द्वय भूप-हृदय विह्वल भर आया ॥६०॥
कम्पित थर-थर गात, ह्वै गई गद्-गद् वाणी ।

विरह व्यथा से त्रसित, नयन से टपकत पानी ॥६१॥
मोह ग्रसित नृप देख मात की ओर निहारे।
पद्मा ने उद्‌बोध-बैन तब यूं उच्चारे ॥६२॥

× × ×

मोह वश यह जीव भटके, मोह त्याग न करि सकै।
भाव जो उर मांहि उपजै, तो न दीक्षा धरि सकै ॥६३॥
जो कदाचित् हो विरागी, उर विकल्प अनेक यूं।
भोग तज भीषण परीषह, सह सकेगी देह क्यूं ॥६४॥
कर्म को कर निर्जरा, जब भव्य जन दीक्षा धरै।
दुर्लभ महा, ऐसे सुपथमें, कौण नर वाधा करै ॥६५॥

॥ दोहा ॥

वाधक भूपति मोह वश, बनो न दीक्षा मांहि।
ज्ञानी सत्-पथ पथिक को, विचलित करते नांहि ॥६६॥
सुन सम्यक्-वाणी हृदय, शान्त होय शिर नाय।
लौट गये नृप निज भवन, निष्ठा अति उर आय ॥६७॥

× × ×

तजि विकार मतिमान, पुण्यवान जीवक महा।
पालन करत महान, नीति धर्म युत निज प्रजा ॥६८॥
पुर जन हो भय हीन, रहत न्याय-युत राज्य में।
दुःखी दरिद्री दीन, लख न पड़ें खोजे कहीं ॥६९॥

सुत-सुता और वैभव पूरित, मृगनयनी महिषी राज भवन।
हय-गय रत्नादि, सैन्य अतुल,सब हितू मित्र परिजन-पुरजन७०
षट्ऋत में भोगें भोगविविध,षट्रस नित व्यंजन स्वाद तने।
नाना विधि उबटन,न्हवन-सुखद,शय्या पर्यङ्क प्रसून सने ।।७१
भूपति अनंग-रस-रंगलीन, रतिसी प्रमदाएँ भरि उमंग।
कर विविध विलास विहार करें,परिहास प्रमाद-प्रमोद संग७२
इस तरह काल सुखदायक वह,बीतत नहीं कुछ भी पड़ाजान।
होगये दशक-त्रय पूर्णशीघ्र,भोगत सुख सुरपति के समान।।७३
अवतीर्ण अवनि पर हुआ तभी,मधुमय मादक ऋतुराज महा।
परिपूर्ण छटायुत वन-उपवन, तरुलता, पल्लवित कुसुमवहां७४
खिल उठे नवल पल्लव इठला,पहना धरणी ने चीर हरा।
अवगुण्टन डाले मुस्काई, महकाई मलय-समीर धरा ।।७५।।

।। दोहा ।।

किया प्रकृति ने इस तरह, विविध भांति शृंगार।
जो इठलावे रूप सजि, सद्य यौवना नार ।।७६।।
वीणा सी ध्वनि गूंजती, कोकिल की तरु डार।
करते नृत्य मयूर गण, कलरव होय अपार ।।७७।।

× × ×

रंग अनंग के रंग, चंचल चित जीवक भयो।
मनमें जगी उमंग, मृदु-मादक-मधु मास में ।।७८।।

क्रीड़ा-हित उर ठान, चढि गजरथ ले साज सब ।
अति मनहर उद्यान, लेय संग ललना सकल ।।७९।।
पुर परिजन नर-नारि, चले सकल उल्लास भर ।
बसन-बसन्ती धारि, रंग बसन्त के रंग में ।।८०।।

× × ×

कोई इक करत किलोल, भामिनी संगमें नाचै ।
मधु स्वर गावत गीत, विविध क्रीड़ा-रत-राचैं ।।८१।।
कोई मतवारी नारि, घूमती पिय संग डोले ।
लाज त्याग बहु-हास्य, वचन रचना से बोले ।।८२।।
ले कर रंग गुलाल, परस्पर रमणी डारैं ।
भरि पिचकारी डारि, वसन गीले कर सारे ।।८३।।
नेह सहित करि कोप, पुनः अनुराग जतावैं ।
रूठत फेरत नैन, कन्त आ कंठ लगावैं ।।८४।।
हरित धरा पर गिरत, गिरत पुनि उठकर धावैं ।
मन्मथ पीड़ित तन मरोरि, निज अंग दिखावैं ।।८५।।

।। दोहा ।।

कनक वदन सी नारि संग, केलि करत भूपाल ।
सुरति सरस रस पान कर, मानों होहिं निहाल ।।८६।।
पुनि जल क्रीड़ा रत भये, उर-रंजन अभिराम ।
करत नीर मंथन थके, तरु-तर लहि विश्राम ।।८७।।
मध्य आय तिष्ठै तहां, वनिताएं चहुं ओर ।
करत हास-परिहास सब, हो उन्मत्त विभोर ।।८८।।

कपि दल इक आया तभी वहां, वे उछल-कूद थे मचा रहे ।
मन्मथ-पीडित, मदमत्त होय, उन्मुक्त स्नेह निज जता रहे ।।
कपि-युगल एक था क्रीड़ा रत, नृप देख रहे थे दत्त-चित्त ।
कुछ कालबाद निज प्रिया छांड, वानरी अन्य पर लीन-चित।।
यह देख वानरी कुपित होय, तज ठौर तहां से उठ धाई ।
कपि को निज परुषा वाणी में, की प्रगट हृदय की रुसवाई ।।
निजवनिता लखकर क्रुद्ध त्वरिक, कपि अन्य वानरी तज आया
करने को प्रिया प्रसन्न तहां, अति स्नेह जताकर समझाया ।।

× × ×

लख न सके कोई नार, परनारी संग कंथ को ।
दे अनुराग विसार, नेह-व्यथित आघात से ।।९३।।

× × ×

वानरी कठोर हो रही रुष्ट, मुंह फेरा कपि से चली दूर ।
कर जतन विविध थकके वानर, हो विरह व्यथा से चूर-चूर९४
निज हृदय व्यथा दरसाई यूं, छट-पट-तड़फाया अपना तन ।
धरणी पर शव सा गिरा मूक,निस्पन्द शयन करमून्द नयन।९५
यह देख दशा निज प्रियतमकी, वानरि तज सारा मान भगी ।
फिर करके अति अनुराग तभी, सहला-सहला तन अंग लगी।९६
तब वानर ने कर आलिंगन, अपना अनुराग जताया यूं ।
अब ऐसी भूल करूं न कभी,निज कान पकड़ समझाया यूं।९७

× × ×

को नर ऐसो होयं, हो उरमें हर्षित नहीं ।।
जो कहुँ रूठी होय, अति प्रसन्न निज भामिनी ।।९८।।

पुनि होकर उर मगन, विविध विधि क्रीडा करते ।
भागत, लिपटति, गिरत, उठत, कपि युगल विचरते ।।६६।।
इक कटहल तरु डाल चढ्यो कपि अति हरषायो ।
सुन्दर फूल इक तोड़, लाय निज प्रिया थमायो ।।१००।।
तहँ आयो वनपाल, देखि फल पीछे धायो ।
ले निज कर इक दंड, मर्कटी मार भगायो ।।१०१।।
अरु लीन्हों फल छीन, लेय निज झोली डार्यो ।
देखि यह सकल चरित, नृपति उर मांहि विचार्यो ।१०२।
वन उपवन सरतादि, गुल्म-तरु गिरिवर-धरणी ।
किये विविध निर्माण, प्रकृति की अद्‌भुत करणी ।।१०३।।
जन-जन के उपभोग हेतु, निर्मित कर डारे ।
तिन पर कर अधिकार, कहत बलवान हमारे ।।१०४।।
निर्बल को नहीं कोय, मही पर बने सहायी ।
लाठी जिसकी भैंस, सत्य यह उक्ति कहायी ।।१०५।।
सदा सताते रहे, दीन-जन को बलशाली ।
फल छीन्यो जिहं भांति, मर्कटी से वन माली ।।१०६।।
छल-बल से बन भूप, देश पर शासन करते ।
करे न्याय का ढोंग, नेक नहीं अघ से डरते ।।१०७।।

× × ×

मम पितु को कर घात, पापी काष्ठांगार यों ।
भूपति बन्यो बलात्, छल-बल से कर वंचना ।।१०८।।

अवसर पा निज हाथ, मैं प्रकटायो बाहुबल ।
बन बैठ्यो नर नाथ, वधकर काष्ठांगार को ॥१०६॥
रह्यो न चिर यह राज, ना मेरो ना तात को ।
रही न युग लों आज, काहू की भी यह धरा ॥११०॥
नाना विधि अन्याय, हो मदान्ध मानव करे ।
चपला सम चमकाय, थिर नहीं यह जग संपदा ॥१११॥

× × × ×

प्रेत भूमि में जन्म लिया, मां बिछुड़ि पराश्रय पाय पला ।
क्या-२ नहीं झेले दुख-सुख थे, क्या-२ नहीं कीना बुरा-भला ॥
यौवन बीता, आगई जरा, पद प्रेत भूमि की ओर चले ।
जो बीता कल वह आज नहीं, यह आज बीत कर कल न मिले
उमड़े उरमें इस तरह भाव, भयभीत हुए भव बन्धन से ।
पहुंचे निज भवन तुरन्त भूप-तजि वन-उत्सव उस उपवन से ॥

॥ दोहा ॥

निर्जन थल एकान्त में, जा बैठे धरि ध्यान ।
यूँ चिन्तन करने लगे, जीवन्धर मतिमान ॥११५॥

× × × ×

(अनित्य भावना)

जो जन्म धारता है प्राणी, इक दिवस मृत्यु वह पाता है ।
है परम्परा यह रही सदा, कोई न अमरता पाता है ॥११६॥
यह धन यौवन, यह सुन्दर तन, नश्वर है जगकी यह माया ।
है नहीं समय अब शीघ्र चेत, करले उपाय नर तन पाया ॥

क्षण भंगुर है यह जग जीवन, यह खूब समझता है प्राणी।
फिर भी ममत्वयुत अभिलाषा, प्रति दिवस बढाता अज्ञानी॥
हो विषय भोग रत सुख माने, मृग तृष्णा के पीछे भागे।
है यह अनित्य संसार, घूमता कालचक्र तेरे आगे॥११९॥

× × × ×

(अशरण भावना)

क्षण क्षण बीता जाय यह, भव भोगन में चित्त।
काल अवधि घटती रहे, श्वास-श्वास कर नित्त॥१२०॥
श्वास-श्वास कर नित्त, काल इक दिन आजावे।
यंत्र-मंत्र, सुत-भ्रात, देव देवी न बचावे॥१२१॥
देय शरण नहीं कोय, विनशि यह काया जावे।
सुख के संगी सभी, विपत में काम न आवे॥१२२॥
शरण धरम की सार, जाएगा जग से रीता।
पछताएगा मूढ, जाए यह क्षण-क्षण बीता॥१२३॥

× × × ×

(संसार भावना)

होय कर्म वश जीव चतुर्गति में भटकावैं।
पाप-पुण्य फल देव नरक-पशु-नर गति पावैं॥१२४॥
या जगती तल माहिं, सुखी नहीं पड़ै दिखाई।
मोह ग्रसित यह जीव, दुःख भोगे अधिकाई॥१२५॥
सुत-दारा परिवार हेतु, अघ नित्य कमावैं।
ज्ञान हीन हो अन्ध, दुःख को सुख बतलावै॥१२६॥

राग-द्वेष बढाय, तृषा-तृष्णा न मिटावै ।
अहो खेद ! सब जानि, फेर उर सुधि नहिं लावै ।१२७
बार-बार कर जनम-मरण यूँ फिरता डोले ।
मेटि शुभाशुभ द्वार, क्यों न अन्तर का खोले ।।१२८।।

× × ×

(एकत्व भावना)

आता है जीव अकेला ही, जाता भी स्वयं अकेला है ।
देखो विचार कर जग जीवन, बस चार दिनों का मेला है ।।
कहता है प्राणी सुत-भ्राता, यह जनक-मात सब मेरे हैं ।
धन, सम्पद-परिजन,घर-गृहिणी,सुत अरु बान्धवगण मेरे हैं ।
पर कर विचार यह देख जरा, जो देह जन्म से साथ हुई ।
मरघट में जाकर छोड़ साथ, हो भस्म अनिल में राख हुई ।
रह गया धरा पर धरा धाम, परिजन मरघट तक संग आये ।
है रैन बसेरा सा जग यह, प्रातः सब पंछी उड़ धाये ।।१३२
रह गया अकेला यह चेतन, बस पाप-पुण्य ही साथ रहे ।
है भिन्न रूप तेरा सबसे, अब क्यों नहीं सम्यग्ज्ञान गहे ।१३३

× × ×

(अन्यत्व भावना)

चिदानन्द मय रूप आतमा, सदा देह से भिन्न रही ।
जब-जब इसने विविधरूप धरि,विविध भांतिकी देह गही ।।
तू चैतन्य स्वरूप, अचेतन, देह भिन्न, नाहीं जानी ।
जो जड़ वस्तु जगत की तैंने, मोह ग्रसित अपनी मानी ।।१३५

विषय-राग, बान्धव परिवारा, ये न कदापि तुम्हारे हैं।
ज्यों नर पहने वसन देह पर, वसन देह से न्यारे हैं ।।१३६।
है चेतन तू भिन्न सभी से, फिर क्यों तू उठ-उठ धावै।
अन्य-अन्य ही रहे तुम्हारे, काम नहीं कोई आवै ।। १३७।।
जानि स्वरूप पिछानि स्वयं को, कर्म रहित होसी कैसे।
दहत अनल, तपती ज्वालामय, रूप रहित होती जैसे ।।१३८

× × ×

(अशुचि भावना)

कामदेवसा यह तन पाकर, विविध भांति शृंगार किया।
उबटन न्हवन, सुगंधित लेपन, वसन धारि उर हर्ष किया।।
पर तैंने क्या सोचा ऐसे, होगा यह तन क्या पावन।
महा अपावन मात्र लपेटा, हुआ आवरण मन भावन ।।१४०
शिल्पकारने चतुराई से, चर्म-आवरण चढा दिया।
रक्त-मांस-मज्जा, रज बीरज, अस्थि जोड़ तन बना दिया।।
मल-मूत्रादि भरे अन्तर में, देखत घृणा हृदय आवैं।
और अपावन वस्तु जगत में, इससे अधिक नहीं पावै ।।१४२
फिर क्यों हो आसक्त देह पर, अपना समय गंवाता है।
डरता है तन राख बनेगा, शव मरघट में जाता है ।।१४३।
जो रुचि करले निज अन्तर की, देह-नाश-भय मिट जासी।
ज्यों रस पीकर शेष ईख जन, घर से बाहर फिकवासी ।।

× × × ×

(आस्रव भावना)

ज्यों नौका हो छिद्र युत, डूबत उदधि मंझार।

त्यों प्राणी भव सिन्धु में, गोते खात अपार ॥१४५॥
गोते खात अपार, अधोगति पावै प्राणी ।
करत शुभाशुभ बन्ध, कर्म आस्रव दुःख-दानी ॥१४६॥
कर्मबन्ध का भोग, भोगना निहचै पड़सी ।
निर्मल हो न स्वरूप, हिताहित लख नहिं पड़सी ॥१४७॥
कर्मास्रव बिन रुके, मोक्ष पद पावै कैसे ।
डूबत उदधि मँझार, छिद्र युत नौका जैसे ॥१४८॥

× × × ×

(संवर भावना)

हो यदि वांछा हीन, मोह फिर तज दे सारा ।
हो प्रमाद से रहित, होय रत आतम विचारा ॥१४९॥
पंच समिति, त्रय गुप्ति, धर्म दश उरमें धारै ।
सहत परीषह विविध, भाव नहीं नेकु विगारे ॥१५०॥
हो विरक्त सुख-दुःख, जानि सम समता धारै ।
करि संवर की ओट, कर्म दूरहिं परिहारै ॥१५१॥
हो चिन्तन में लीन, ज्योति निज माँहि जगावै ।
जन्म-मरण से मुक्त होय, सिद्धालय जावै ॥१५२॥

× × × ×

(निर्जरा भावना)

दीपक लेत जलाय, होय अंधेरा घर विषै ।
या विधि जग सुख दाय, कर प्रकाश तम परिहरै ॥१५३॥
रोकि लेय जब पंथ, पूर्व-कर्म के बन्ध जब ।
धरैं निर्जरा सन्त, ताहि निवारण हेतु तब ॥१५४॥

कर्म कलंक दुःखकार, रत्नत्रय पावक दहत ।
ज्ञान ज्योति सुखकार, प्रगटे तब हिरदय विषै ॥१५५॥
यामें कहा विचार डाल पके फल खाय सब ।
सोही फल सुखकार, पाल देय करदे मधुर ॥१५६॥
भोगत भोग अनन्त, कर्मोदय फल सकल जग ।
धनि सुर पूजित सन्त, जो तप करि हैं निर्जरा ॥

× × ×

(लोक भावना)

है अनन्त आकाश और हैं, फैले यहां अनन्त प्रदेश ।
लोकालोक अनन्त यहां हैं, जन्म-मरण जहँ होय हमेश ॥
जाने कितनी बार जन्म ले, मरा और फिर जन्म लिया ।
ज्ञानहीन हो जाने कितना, लोक-लोक में भ्रमण किया ॥
है अनादि जग है अनन्त, है स्वयं सिद्ध रचना सारी ।
सदा शाश्वत है त्रिलोक यह, तू जिसमें भटका भारी ।१६०।
करले अब कुछ करनी ऐसी, नहीं भटकना पड़े यहां ।
सिद्धलोक में बसे अगर तो, आवागमन न होय यहां ॥१६१।

× × ×

(बोधि दुर्लभ भावना)

सब गतियन में दुर्लभ है मानव तन पाना ।
अरु निरोग सर्वांगपूर्ण सुन्दर तन पाना ॥ १६२ ॥
जो निरोग तन पाय सम्पदा दीन रहावैं ।
उत्तम जन सत्संग, नहीं उत्तम कुल पावैं ॥ १६३ ॥

पुण्य योग यदि सकल मिले, सुख साधन पावै ।
होय विषयवश फिरे, धर्म की बात न भावै ।। १६४ ।।
जो पालै यदि धर्म, करै तप बन मुनि ध्यानी ।
होय न आतम-ज्ञान, महा दुर्लभ यह जानी ।। १६५ ।।
भेद स्वपर को जानि, ज्ञान जो सम्यक् जानै ।
तभी सफल भव होय, जबैं निज-निज पहचानै ।। १६६।।

× × ×

(धर्म भावना)

चिन्तित रहता निशि-दिन प्राणी, रहती है सुखकी चाह सदा ।
यदि पूरे हो न मनोरथ तो, दुख से रहता है दुखी सदा ।।१६७
यह महिमा एक धर्म की है, बिन मांगे सब मिल जाता है ।
हो जाते दूर सभी दुखड़े, नर ऋद्धि-सिद्धि पा जाता है ।।
जो वीतराग ने सब जगको, यह धर्म अहिंसा बतलाया ।
जग तारक है उद्धारक यह, सुखदायक सबके मन भाया ।।
है श्रेष्ठ वही अब पथ मेरा, जिससे आतम-हित कर पाऊँ ।
इस हेतु मोह तजि, जिनेश्वरी-दीक्षा ले धर्म शरण जाऊँ ।।

।। दोहा ।।

यूं विचार निश्चय करचो, जीवंधर उर मांहि ।
विष पूरित हैं ये विषय, विषधर बन डस जाहिं ।।१७१

× × ×

अपने विचार तब नरपति ने, बतलाये परिजन-पुरजन को ।
सुत, भ्रात हितू वनिताओं को, सचिवादिक को, निज प्रियजन को

हमने इस धरणीपर आकर, सब सुख दुःख देखे बुरे भले ।
जो नहीं मिली अब तलक हमें,अब उसी शांतिके हेतु चले ।।
यह् राज-काज, शासन-वैभव, हम त्याग अकेले जाते हैं ।
बन सके निराकुल शान्त जहां, हम उसी खोजमें जाते हैं ।।

।। दोहा ।।

ज्येष्ठ तनय को राज्य दे, तजि सब घर परिवार ।
जीर्ण वसन सम छांडि सब, सम्पति रत्नागार ।।
करि जिन पूजा प्रथम तब, णमोकार उच्चार ।
गुरु वन्दन के हेतु हो, गज रथ पर असवार ।। १७६।

× × ×

होगया नगर में शोर प्रजाजन, सब दौड़े-दौड़े आये ।
नर-नारि, वृद्ध सब बाल-युवा, नृप के पीछे-पीछे धाये ।।
थे धन्य-धन्य कह रहे सभी, था धन्य भूपका सुख शासन ।
हैं धन्य तपोवन पंथ गहा, तज दिया राज्य यह सिंहासन ।।
पा कष्ट अनेकों प्राप्त किया, यह शासन अपने भुजबल से ।
तज दिया जान यह जग मिथ्या, जाने ये विषय हलाहल से ।।
है धन्य त्याग, आदर्श धन्य, है धन्य विचार विराग भरे ।
जिसने छोड़े सब राग-द्वेष सत् पथ पर पावन चरण धरे ।।

।। दोहा ।।

गूंज रहे पथ वीथिका, नृप की जय जयकार ।
आ पहुँचे तब विपिन में, जीवंधर सुकुमार ।।१८१।।

तँहा एक ऋषि ऋद्धि युत, थे ध्यानासन लीन ।
करि दर्शन हर्षित हुए, उर में नृपति प्रवीन ॥१८२॥

× × ×

धाये तब रथ छोड़, नवायो शीश चरण में ।
मैं आयो ऋषिराज, आज सब त्याग शरण में ॥१८३॥
देहु ज्ञान का दान, आतमा भय से व्याकुल ।
किस विधि होऊं सुखी, व्याधि से हीन निराकुल ॥१८४
बोले ऋषि—नृप सुनो, देह यह बन्धन भारी ।
है इसमें परतंत्र, आतमा अति दुखियारी ॥१८५॥
होय मोह वश विषय, भोग अति सुखकर भावै ।
तृष्णा तृप्त न होय, नित्य दूनी बढ जावै ॥१८६॥
जन्म-मरण अरु भूख-प्यास, आतम अकुलावै ।
मृग तृष्णा से फिरै, निराकुलता नहिं पावै ॥१८७॥
कर्म-जाल सों जकड़ि, जीव जगमें भरमावै ।
गति-गति डोल्यो फिरै, फेर गति-गति फिर आवै ॥१८८
जो चाहो सुख चित्त, चिरंतन निज पहचानो ।
स्वातम को स्व मानि, और सब पर ही मानो ॥१८९॥
पाप-पुण्य से रहित, आतमा जब हो जावे ।
छूटै आवागमन, निराकुलता तव पावे ॥१९०॥

× × ×

धन्य-धन्य मुनिनाथ ! जोड़ युगल कर नृप कह्यो ।
अब मैं भयो सनाथ, शान्ति मिली तव दरश से ॥१९१

मम पूरव भव हाल, अवधिज्ञान से अब कहो ॥
प्रभु ! इस जीवन काल, किहि कारण दुःख सुख मिले ॥

(पूर्व भव कथन)

॥ दोहा ॥

बोले ऋषिवर-सुनहु नृप ! तव पूरव भव हाल ।
देत शुभाशुभ कर्म फल, पूरव के इह काल ॥१९३॥

× × × ×

घात खण्ड में वसे तिलकपुर, नामा नगरी एक महान ।
पवनवेग थे भूप वहां के, धर्मधीर, गुण निधि वलवान ।१९४
तिस नृप के घर थे तुम जन्मे, नाम यशोधर था विख्यात ।
क्रीड़ारत बढ रहे कला शशि, की ज्यों बढती है दिनरात ॥
एक दिवस पहुँचे क्रीड़ा हित, उपवन में थे राजकुमार ।
समवयस्क सब मित्र साथमें, खेल रहे थे विविध प्रकार ॥
तहँ देख्यो शिशु इक मरालको, अतिही सुन्दर कोमल तन ।
पकड़ उसे क्रीड़ावश लाये, संग में अपने राज भवन ॥१९७
निज सुत के वियोग से व्याकुल, होय दुःखी वह युगल मराल
पर हो विवश तड़फते पंछी, लौट गये होकर बेहाल ॥१९८
हुई ज्ञात यह बात नृपको, तुरत बुला समझाया यूं ।
इस निर्दोष मराल-बालको, बता पकड़ कर लाया क्यूं ।१९९
अगर तुझे कोई पिंजरे में, इसी तरह से करदे बन्द ।
कैसा होगा क्लेश चित्तमें, अपने पर पाकर प्रतिबन्ध ॥२००

और बता कोई कर डाले, तुझको मात-पिता से दूर ।
तो विछोह से हृदय हमारा, क्या नहीं होगा चकनाचूर ।।
देख बनाया इसने रो-रो, पिंजरे में कैसा निज हाल ।
उधर तड़फता होगा वन में, सुत-विछोह से युगल मराल ।।
किंचित् मात्र दुखाना दिलका, उचित नहीं है भारी पाप ।
तुरत इसे आ! छोड़ विजन में, करो हृदय में पश्चाताप ।२०३

।। सोरठा ।।

कर करुणा संचार, हुआ द्रवित उरमें कुंअर ।
पितु-आज्ञा अनुसार, छुड़वाया शिशु हंस को ।।२०४।,

× × ×

समय पाय आया यौवन, तब ब्याह कुंअर के आठ हुए ।
सानन्द राज्य पद पा जगके, सुख विविध भोग उपभोग किये।
इक दिवश मिला ऐसा कारण,जग से विराग हो घर छोड़ा ।
अरु साथ २ वनिताओं ने सारे ममत्व से मुँह मोड़ा ।।२०६
लेकर जिन दीक्षा सुखदायी, दुद्धर तप कीना तीन काल ।
सन्यास मरण कर अन्त समय,पाया सुरपति पद सुख विशाल।

।। दोहा ।।

देवलोक से चयकर आए जीवंधर सुकुमार ।
पूर्व पुण्य के योग से, भोगे भोग अपार ।। २०८ ।।

तुमने मराल शिशु का विछोह, निज मात-पिता से करवाया
बस उसी कर्म फल से तुमने, जननी का आंचल नहीं पाया।
पिंजरे में बन्द किया उससे, तुमको भी कारागार मिला।
लीला विचित्र अति कर्मों की, जो तुमको रूप अपार मिला।
पूरव भव की वे सब वनिता, इस भव में तेरे साथ-साथ।
भव-भव का नाता जुड़ जाए, तो है अचम्भ की कौन बात ॥

॥ दोहा ॥

हैं दुखदायी जीव के, मोह राग अरु द्वेष।
दुष्ट कर्म थोड़े विगत, इँह दुःख देहिं विशेष ॥२१२॥
काहू से न विरोध कर, करो नहीं अपकार।
भव-भव में ले बैर का, प्रतिफल वारम्वार ॥२१३॥
एक बार जो द्वेष वश, उर निदान कर लेय।
जन्मान्तर में जीव वह, निश्चय बदला लेय ॥२१४॥

× × × ×

सुनि पूरव भव-कथन, भूप हर्षित भयो।
पुनि-पुनि कियो प्रणाम, विरत जगसे हुयो ॥२१५॥
सकल जनन से जोड़ि, पाणि मांगी क्षमा।
वस्त्राभूषण किये दान, त्यागी रमा ॥२१६॥
लखि यह आठों नारि, कह्यो कर जोड़के।
हे स्वामिन् ! अब आप चले जग छोड़के ॥२१७॥

हम-रह कर जग मांहि भला क्यों दुःख सहें ।
बन अनुगामिनी तोर, क्यों न सत् पथ गहें ॥२१८॥
पा अनुमति सब संग चली यूँ भामिनी ।
हो ज्यों शोभितनभ में, शशि युत यामिनी ॥२१९॥

॥ दोहा ॥

विपुलाचल पर था वहां, समवसरण महान ।
तहाँ सुशोभित केवली, महावीर भगवान ॥२२०॥
प्रभु पद वन्दन को चले, नृप जीवक के साथ ।
पुरजन मिल प्रभु दरश को, श्रद्धा युत नत माथ ॥२२१

× × ×

लखि दूरहि ते समवसरण, शिर नाइया ।
गज-रथ-वाहन त्याग, उपानहु धाइया ॥२२२॥
धनपति निर्मित समवसरण अति शोभनों ।
मानस्तंभ महान, सुरनि मन मोहनो ॥२२३॥
द्वादश कक्ष विशाल, मध्य कमलासनो ।
तिष्ठै श्री अरिहन्त, दरश अघ नाशनो ॥२२४॥
जय जय जय नाद, पुलकि नृप उच्चरचो ।
देय प्रदक्षिण तीन, स्तवन इँह विधि करचो ॥२२५॥

॥ दोहा ॥

तीन लोक पति देव तुम, मैं अनाथ तुम नाथ ।
भंवर भवोदधि में फंस्यो, गहो देव ! मम हाथ ॥२२६

जन्म जराके रोग तैं, मैं अति पीड़ित भीत ।
हरो वेदना मम सकल, कहलाते अरि-जीत ॥२२७॥
हितू अकारण विश्व के, तारण तरण कहात ।
भव बाधा मम मेटि प्रभु, करहु शान्त अघ घात ॥२२८॥

× × ×

तेरे दर्शन कर भगवान, हुआ उरमें आनन्द महान ।
फैला मोह महातम भारी, जिसमें भटक रहे संसारी ॥
पाकर दिव्यज्ञान का दान, हुआ उरमें आनन्द महान ॥२२६॥
तेरी दिव्य ध्वनि हितकारी, सुन-सुन अघ नाशे भयकारी ।
कर कर निज आतमरसपान, हुआ उरमें आनन्द महान ।२३०
जिसने पाकर सुन्दर काया, तेरा दरस-परस नहीं पाया ।
गंवाया मणिको पाहन मान, हुआ उरमें आनन्द महान ॥२३१
भटकता रहा अनन्ताकाल, छूटता नाहिं मोह का जाल ।
अब तव चरण शरण भगवान, हुआ उरमें आनन्द महान ।२३२
मिटादो मेरा तम अज्ञान, बने हैं पापी पुरुष महान ।
बनालो मुझको आप समान, हुआ उरमें आनन्द महान । तेरे

॥ दोहा ॥

वहत मोह दावा-अनल, कानन जीरण देह ।
'त्राहि माम्' रक्षा करो, देहु अभय वर-नेह ॥२३४॥
जिन दीक्षा प्रभु देहु अब, है विनती करजोर ।
भव सागर से पार ह्वं, पाऊं शिवपुर ठौर ॥२३५॥

तीन-लोक पति स्तवन, करचो इह विधि सुखकारी ।
पाय अनुज्ञा प्रथम, नम्यो गणधर गुणधारी ।।२३६।।
परम दिगम्बर रूप, देव दुर्लभ नृप धारचो ।
दिये वसन तब त्याग, लौंच केशनि कर डारघो ।।२३७।।
गंधर्वदत्ता आदि सकल आठों महारानी ।
वीर प्रभु की शरण लेय, जिन दीक्षा ठानी ।।२३८।।
सती चन्दना अति पुनीत, जिन दीक्षा दीन्ही ।
छांड़ि परिग्रह सकल, धवल साड़ी तन लीन्हीं ।।२३९।।
भये महाव्रत धार, साधु नृप श्री जीवंधर ।
अरु आर्यिका भई, राजरानी सब सत्वर ।।२४०।।
इहँ विधि दीक्षा धार, साधना-लीन भये हैं ।
बारह विधि तप तपत, कर्म-अरि क्षीण किये हैं ।।२४१।।
सम्यक दर्सन धारि, ज्ञान को मरम पिछान्यो ।
जीव-देह है भिन्न, रूप आतम को जान्यो ।।२४२।।
सुख-दुःख एक समान, मित्र-अरि भेद न जाने ।
कंचन-काच स्वरूप, एक जस-अपजस माने ।।२४३।।
उर में होय निशल्य, राग अरु द्वेष विसारचो ।
है कषाय सो हीन, मान अभिमान निवारचो ।।२४४।।
त्रेसठ प्रकृति निवार, घातिया कर्म विनासै ।
उपज्यो केवलज्ञान, सृष्टि करतलवत् भासै ।।२४५।।

× × ×

यूँ जीवक ऋषि राजने, पायो पद अरिहन्त ।

गंध कुटी रचि सुरनि ने, सिंहासन शोभन्त ॥२४६॥
अधर तिष्ठते ता विषैं, जीवंधर भगवन्त ।
दिव्यध्वनि अक्षर रहित, मुखसे विमल खिरन्त ॥२४७॥
भव्य जनन प्रतिबोधते, भाषत ज्ञान अनन्त ।
धन्य-धन्य करते नमन, सुर-पशु, नर-जन-सन्त ॥२४८॥

× × × × ×

हो इच्छाहीन विहार करचो, सब देश-विदेशन में जिनने ।
धर्मामृत पान करचो भवि जो, यों लाभ लियो तनको तिनने
जिनवाणी बही सरिता सी तहाँ,अति पावन होय चतुर्दिशि में
नहिं दोष अठारह रहे तन्मय,निज चिन्तन चिन्त्य अहर्निशि में

× × × ×

फिर आयु कर्म का क्षय करके, जीवन-मृत्यु से भये मुक्त ।
हो गये निरञ्जन निर्विकार, बन ज्योतिर्मय, हो ज्योतियुक्त ॥
है जहां दुःखों का लेश नहीं, अनुपम आनन्द निरन्तर है ।
बन पूर्ण बुद्ध, परिपूर्ण शुद्ध, हो सिद्ध बसे जीवंधर हैं ॥२५२

॥ दोहा ॥

अष्ट आर्यिका जो भईं, तप करि कर्मनि क्षार ।
निज-निज फल अनुसार सब, सुरपद पा सुखकार ॥२५३॥

× × × ×

अति निर्मल यह अति पुनीत जीवक की गाथा ।
अति आदर्श स्वरूप, अवनि तल पर विख्याता ॥२५४॥
नर भव पाकर सफल, चार पुरुषारथ साधैं ।
पार करैं भव सिन्धु, रत्नत्रय जो आराधैं ॥२५५॥

मानव जो बन जाय, महा मानव यश पावै ।
पूजित है पद "पद्म", सुयश "अक्षय" जग गावै ॥२५६॥

॥ दोहा ॥

जा गाथा के स्मरण तें, अघ नाशत दुःखकार ।
सो गाथा जिन बचन की, कथनी यह सुखकार ॥२५७॥
जिनवाणी निर्मल विमल, पावन परम पुनीत ।
करहि पठन श्रद्धा सहित, पावहि ज्ञान नवनीत ॥२५८॥
महा पुरुष जितने भये, कियो जगत उद्धार ।
कर अनुसरण पुनीत पथ, "पद्म" भवोदधि पार ॥२५६

इस प्रकार छन्दोबद्ध जीवंधर चरित्र में
निर्वाणलाभ नाम का ग्यारहवाँ लम्ब
पूरा हुआ ।

रचनाकार–परिचय

भारतवर्ष महान, मध्य मरु-धरणी भावे ।
राजस्थान प्रदेश, जिला पाली कहलावे ।।
"आनन्दपुर" इक नगर, वसे 'कालू' मनहारी ।।
श्रावक जन बहु तहाँ, धरम के पालनहारी ।।
विद्याप्रेमी सकल भव्य, यह बात विचारी ।
धर्म–ज्ञान के हेतु, बने विद्यालय भारी ।।
तब दानी जन दान, मुक्त-कर से कर दीन्हों ।
ज्ञान–दान हित एक, भवन निर्मित कर लीन्हों ।।
अरु अध्यापक वृंद, कुशल विद्वान, बुलाये ।
श्री "अक्षय" गुणवान, वहाँ परधान बनाये ।।
"गंगवाल" शुभ गोत्र, ज्ञान अक्षय के धारी ।
रच्यौ विपुल साहित्य, भव्य-चितरंजन कारी ।।
नाटक, कविता, गद्य, पद्य, रच जन हितकारी ।
दियो ज्ञान धीमान, जैन शासन अनुसारी ।।
तिनहीने यह चरित, लिख्यो सुन्दर हितकारी ।
नवम लम्ब करि पूर्ण, दशम की की तैयारी ।।
किन्तु कर्म बलवान, काल ने चक्र चलाया ।
छीन लिया मतिमान, विलग सबसे करवाया ।।
रही अपूरण रचित, काव्य-रचना मनहारो ।
दशक भये अपूर्ण, गई काहू न निहारो ।।

"आनन्दपुर" में चतुर्मास, मुनिसंघ ने कीन्हो ।
"समतासिन्धु" महान, काव्य लखि यूं उर चीन्हो ।।
जिन भाषित यह चरित, पठन भविजन उर भावें ।
हो यदि पूरण ग्रंथ, ज्ञान उपलब्धि लहावें ।।
"पद्मराज" ने पाय अनुज्ञा, शिर धर लीन्हो ।
हूँ यद्यपि अल्पज्ञ, पूर्ण निज-मति सूँ कीन्हो ।।
"करकेड़ी" लहि जन्म, अर्थ हित "जयपुर" आये ।
"गंगवाल" तिन गोत्र, छन्द लिपि–बद्ध कराये ।।
व्याकरण आवे न, शास्त्र का मर्म न जाने ।
क्षमा करें जन विज्ञ, भूल यदि जो पहचाने ।।
मूल ग्रंथ अनुसार, पुण्य यह गाथा गायी ।
"अक्षय" तरु के सुमन, "पद्म" माला गुंथवायी ।।

जैन धर्म किन लोगों का धर्म हो सकता है—

यह पं० अक्षयकुमारजी के शब्दों में उनकी एक कविता में पढ़िये

यह उन लोगों का न धर्म है, जिनका पशुवल बढ़ा हुवा।
जिनके सिर पर हिंसकता, बर्बरता का मद चढ़ा हुवा॥
जिनकी जहर भरी आंखों में जग की होली रहती हो।
जिनके जरा इशारों पर शोणित की नदियां बहती हों॥

यह तो उन लोगों का पथ है जिनका घर सुख औ शांति।
दया, क्षमा, करुणा, कृपालुता, जिनमें पाती हों विश्रांति॥
जिनका व्रत हो सब कुछ सहना, हँसते हँसते मर जाना।
विश्व शांति हित हो प्रसन्न बलिदान स्वयं का कर जाना॥

यह उन लोगों का न धर्म है जिन्हें न अपने में विश्वास।
कुछ कहते हों कुछ करते हों, मन में हो कुछ ही विन्यास॥
कभी क्रोध से आग बबूला, कभी कांपते हों भय भीत।
वाणी का जो मूल्य न जाने, स्वार्थ पूर्ण हों जिनके गीत॥

यह तो उन वीरों का पथ है जो अपने में सत्य सदैव।
अपने वचन-विचारों की कर्त्तव्य-मूर्ति जो हैं स्वयमेव॥
सीधा, सरल, सत्य औ मृदुतर हो विनम्र जिनका व्यवहार।
जिनका नियम वचन-निर्वाहन जिनका लक्ष्य स्व पर उपकार॥

यह उन लोगों का न धर्म है जो प्रवंचना में पारीण।
परमधिकार-अपहरण करके अपने को जो कहें प्रवीण॥
भय दिखलाकर प्रा[illegible] दिलाकर, स्नेह जता कर देकर लोभ।
करते हैं पर-द्रव्य हरण का जो जग में दुष्कर्म प्रलोभ॥

उन त्यागी जन का यह पथ है जो अपने में है परिपूर्ण।
जो अन्याय मार्ग से धन की आशा को करते हैं चूर्ण ॥
विश्वसनीय विश्व के जो हैं और विश्व में हैं विश्वस्त।
सारी वसुधा जिनका घर है प्राणी जिनके बंधु समस्त ॥

यह उन लोगों का न धर्म है, जिनका व्रत हो भोग विलास।
डाँवाडोल चित्त हो जिनका अखिल इन्द्रियों के जो दास ॥
नारि जाति हो जिनके मत से केवल नर का भोग पदार्थ।
सदा वासनाओं के पथ में जागृत हो जिनका पुरुषार्थ ॥

यह उन सत्पुरुषों का पथ है, जिनका हो आदर्श चरित्र।
जिनके चहरे पर अंकित हो सदाचार औ स्नेह पवित्र ॥
ब्रह्मचर्य जिनका जीवन धन, निर्विकार जिनका आकार।
प्रबल आत्म बल विकसित जिनका निर्भय हों चाहे सुकुमार ॥

यह उन लोगों का न धर्म है. जिनकी तृष्णा अमित अपार।
पृथ्वी के कंकड़ पत्थर ये जिनके जीवन का आधार ॥
जिन्हें जरा संतोष नहीं है, चित्त नहीं है जिनका शांत।
हाय हाय करते जाता है, जिनका जीवन व्यर्थ नितांत ॥

उन मनस्वियों का यह पथ है, जिन्हें नहीं संग्रह से मोह।
जिनके मत से सभी भार हैं, स्वर्ण-रजत हों हो या लोह ॥
सच्चे सुख के जो आकांक्षी जिन्हें निराकुलता है इष्ट।
आत्म शोध पथमें दिखता जिनको पर-संग्रह सभी अनिष्ट।